खण्ड 3
संस्कृत रंगमंच की परम्परा तथा इतिहास

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

खण्ड 3 संस्कृत रंगमंच की परम्परा तथा इतिहास

''संस्कृत रंगमंच की परम्परा'' तथा इतिहास नामक इस खण्ड में कुल 7 इकाईयाँ हैं। ये सभी इकाईयाँ संस्कृत नाट्य एवं रंगमंच से सम्बन्धित हैं। इन इकाईयों में संस्कृत रंगमंच के उद्भव एवं विकास के बारे में आप जान सकेंगे। नाट्य की उत्पत्ति तथा विकास के बारे में आप विस्तार से ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे। इसी क्रम में प्रागैतिहासिक काल से लेकर अधुनातन रंगमंच के विषय में विविध रूप से जानकारी प्राप्त कर सकेंगे। वस्तुतः संस्कृत रंगमंच की परम्परा वैदिक काल से चली आ रही है। यह परम्परा प्राचीन तथा अर्वाचीन का संगम है। आज जो आप रंगमंच का स्वरूप देख रहे हैं उसके मूल में संस्कृत रंगमंच ही है। यह रंगमंच सुश्लिष्ट एवं सुव्यवस्थित है। संसार के सभी रंगमंचों पर इसका व्यापक प्रभाव देखा जा सकता है। आधुनिक युग में संस्कृत रंगमंच का प्रचार–प्रसार भारत के सभी प्रान्तों में दृष्टिगोचर होता है। विभिन्न संस्थाएँ इस हेतु समर्पित भाव से कार्य कर रही हैं। जिनमें वाराणसी, केरल, जयपुर, कर्नाटक, सागर तथा तमिलनाडु इत्यादि में है।

संस्कृत रंगमंच की इस महनीय परम्परा में इस क्षेत्र के प्रसिद्ध निर्देशकों के अविस्मरणीय योगदान के विषय में भी आप विस्तार से जान सकेंगे। इसके साथ–साथ संस्कृत रंगमंच की वैश्विकता के विषय में भी तथ्यपूर्ण ज्ञान आप प्राप्त कर सकेंगे। भारत की इस समृद्ध भाषा का समृद्ध रंगमंच प्रवाहमय, विस्तृत, ज्ञान एवं विज्ञान से परिपूर्ण है, इस विषय में आप इस पाठ के माध्यम से बोध कर सकेंगे।

आचार्य भरत का नाट्यशास्त्र इस विषय का प्रमाणिक ग्रन्थ है। यह संस्कृत नाट्य एवं रंगमंच के इतिहास तथा विकास को अत्यन्त सूक्ष्मरूप में प्रकाशित करता है। आप उपर्युक्त ग्रन्थ के माध्यम से इस विषय से सम्बन्धित तथ्यों का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे

इस खण्ड की प्रत्येक इकाई में इकाई से सम्बन्धित कठिन शब्दों का अर्थ दिया गया है, जिसको जानना आपके लिए नितान्त अपेक्षित है।

इकाई 13 नाट्य : उत्पत्ति तथा विकास

इकाई की रूपरेखा

13.0 उद्देश्य

13.1 प्रस्तावना

13.2 नाट्य उत्पत्ति तथा विकास

- 13.2.1 प्रागैतिहासिक काल
- 13.2.2 वैदिक काल
- 13.2.3 महाकाव्यकालीन रंगमंच
- 13.2.4 पौराणिक काल
- 13.2.5 राजसभा का संस्कृत रंगमंच

13.3 सारांश

13.4 शब्दावली

13.5 कुछ उपयोगी पुस्तकें

13.6 बोध/अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

13.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप :

- संस्कृत नाट्य की उत्पत्ति एवं उसके विकास का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।
- नाट्य उत्पत्ति के सन्दर्भ में ही प्रागैतिहासिक एवं वैदिक काल के विषय में अध्ययन कर सकेंगे।
- संस्कृत के महाकाव्यकालीन रंगमंच के बारे में विस्तार से जान सकेंगे।
- नाटकों के पौराणिक काल से परिचित हो सकेंगे।
- राजसभा के संस्कृत रंगमंच के विषय में अध्ययन कर सकेंगे।

13.1 प्रस्तावना

संस्कृत काव्यशास्त्रियों के अनुसार काव्य दो प्रकार का होता है, दृश्य एवं श्रव्य। दृश्य के दो भेद हैं – रूपक तथा उपरूपक। रूपक के दस भेदों में से एक नाटक नामक भेद भी है। यह नाटक ही नाट्य कहलाता है। नाट्य में श्रव्य काव्य की अपेक्षा रसपेशलता, आकर्षकता, विषय विविधता, मनोनुकूलता, भावाभिव्यंजकता और हृदयग्राहिता अधिक रहती है। इसी कारण नाटक कवित्व की चरम सीमा माना जाता है। **नाटकान्तं कवित्वम्** इसी बात को द्योतित करता है। आचार्य वामन ने काव्यों में नाटक, नाट्य अथवा रूपक को मौलिभूत स्थान प्रदान किया है। वे कहते हैं – **सन्दर्भेषु दशरूपकं श्रेयः। तद्धि चित्रं चित्रपटवद् विशेषसाकल्यात्।** जिस प्रकार कोई चित्र भिन्न–भिन्न रंगों के मिश्रण से दर्शकों के मन में आनन्द की सृष्टि करता है, ठीक उसी प्रकार नाटक भी संवाद, नेपथ्य, वेशभूषा तथा हावभावों से विरचित विभिन्न उपकरणों के माध्यम से दर्शकों के चित्त में आह्लाद उत्पन्न करता है।

ignou THE PEOPLE'S UNIVERSITY

नाट्यशास्त्र में आचार्य भरत मुनि ने नाट्य के विषय में विस्तार से वर्णन किया है। वे कहते हैं – जीवन के सर्वांगीण विकास के लिए नाट्य अत्यन्त आवश्यक है। इसमें मनोरंजन, धर्म, हास्य, शृंगार तथा युद्ध आदि का समावेश होता है। यह धनवानों के लिए मनोरंजन, दुःखियों के लिए आश्वासन, व्यापारियों के लिए आय का साधन और पीड़ितों के लिए शान्ति का कारक है। जैसे –

अबुधानां विबोधष्च वैदुष्यं विदुषामपि।।
ईश्वराणां विलासश्च स्थैर्यं दुःखार्दितस्य च।
अर्थोपजीविनामर्थो धृतिरुद्विग्नचेतसाम्।।
लोकवृत्तानुकरणं नाट्यमेतन्मया कृतम्।
दुःखार्तानां श्रमार्तानां शोकार्तानां तपस्विनाम्।
धर्म्यं यशस्यमायुष्यं हितं बुद्धिविवर्धनम्।
लोकोपदेशजननं नाट्यमेतद् भविष्यति।। नाट्यशास्त्र 1/40–45

इस प्रकार आप इन सभी विषयों को विस्तारपूर्वक जानेंगे तथा भारतीय नाट्योत्पत्ति एवं संस्कृत रंगमंच के विषय में भी परिचय प्राप्त करेंगे।

13.2 नाट्य उत्पत्ति तथा विकास

विविध पात्रों की अवस्थाओं का चतुर्विध अभिनय के द्वारा जब नट अनुकरण करता है तो इसे नाट्य कहते हैं –

योऽयं स्वभावो लोकस्य सुखदुःखसमन्वितः।
सोऽंगाद्यभिनयोपेतो नाट्यमित्यभिधीयते।।

वस्तुतः लोकजीवन का अनुकरण ही नाट्य कहलाता है। दशरूपककार आचार्य धनंजय कहते हैं –

'अवस्थानुकृतिर्नाट्यं रूपं दृश्यतयोच्यते। (दशरूपक 1/7)

'नाट्य' शब्द की व्युत्पत्ति के विषय में विद्वान् मतैक्य नहीं है। आचार्य रामचन्द्र, पाश्चात्य विद्वान् वेबर तथा मोनियर विलियम्स इस शब्द की व्युत्पत्ति क्रमशः नाट्य, नृत् तथा नृत् (प्राकृत रूप) से स्वीकार करते हैं। वस्तुतः नाट्य शब्द अभिनयार्थक नट् धातु से निष्पन्न होता है। यह नाट्य रसाश्रित होता है। कोई व्यक्ति किसी भी रुचि का क्यों न हो, उसे अपना अनुकूल विषय नाट्य–जगत् में अवश्य मिल जायेगा। कालिदास कहते हैं –

"नाट्यं भिन्नरुचेर्जनस्य बहुधाऽप्येकं समाराधनम् (मा. 1/4)

आचार्य भरत नाट्य को सार्ववर्णिक वेद कहते हैं क्योंकि यह प्रत्येक वर्ण के लिए महदुपयोगी है। समाज के लिए यह अत्यन्त उपादेय एवं सुग्राह्य है।

रंगमंच के सन्दर्भ में आचार्य भरत का यह कथन नितान्त उपादेय है –

अपूजयित्वा रंङ्गं तु नैव प्रेक्षां प्रयोजयेत्
न तथाऽशु दहत्यग्निः प्रभंजनसमीरितः।
यथा ह्यपप्रयोगस्तु प्रयुक्तो दहति क्षणात्।।

रङ्गमंच सामान्य कोटि का मनोरंजन हेतु साधन मात्र नहीं है प्रत्युत एव पवित्र धर्मानुष्ठान है। वैदिक साहित्य के वागाम्भृणी, लोमशा, अपाला आदि अनेक पात्रों के एकालाप भाणकृतियों के आकाशभाषितशैली के उक्ति–प्रत्युक्ति पाठ्य अथवा आत्मगत के बोधक हैं।

नाट्य उत्पत्ति

नाट्य की उत्पत्ति के विषय में अनेक सिद्धान्त प्रचलित एवं प्रथित हैं। इनमें भारतीय एवं पाश्चात्त्य मत शामिल है। इनमें से कौनसा मत अत्यधिक प्रमाणिक है, यह प्रश्न अत्यन्त जटिल है फिर भी भारतीय मत ही विद्वानों के लिए सर्वप्रिय रहा है। प्रस्तुत है कुछ सिद्धान्त –

1) **भारतीय मत** – भरतमुनि ने नाट्यशास्त्र में कहा है कि एक बार सभी देवताओं ने परमपिता परमेश्वर ब्रह्मा जी से सानुनय विनय–प्रार्थना की कि हमें ऐसे मनोरंजन का साधन प्रदान करें जो दृश्य एवं श्रव्य दोनों हो, जिसको चारों वर्णों के व्यक्ति समान रूप से अपना सके। ब्रह्मा ने इस प्रार्थना पर चारों वेदों से सार भाग लेकर "**नाट्य वेद**" के रूप में पंचम वेद का निर्माण किया –

तस्मात् सृजापरं वेदं पंचमं सार्ववर्णिकम्। – 1/12
एवं संकल्प्य भगवान् सर्ववेदाननुस्मरन्।
नाट्यवेदं ततश्चक्रे चतुर्वेदांगसम्भवम्।। 1–16

उन्होंने ऋग्वेद से पाठ्य, सामवेद से संगीत, यजुर्वेद से अभिनय तथा अथर्ववेद से रस–तत्त्व को ग्रहण किया –

जग्राह पाठ्यमृग्वेदात्सामभ्यो गीतमेव च।
यजुर्वेदादभिनयान् रसानाथर्वणादपि।। 1/7

शिव से ताण्डव और पार्वती से लास्य लेकर नृत्य तत्त्व भी इसमें योजित किया गया। इन्द्रध्वज नामक पुनीत पर्व के शुभावसर पर भरत के पुत्रों और शिष्यों ने गन्धर्वों तथा अप्सराओं के साथ नाट्य में भाग लिया। ब्रह्मा द्वारा विरचित त्रिपुरदाह एवं अमृतमन्थन नामक रूपकों का सर्वप्रथम अभिनय किया गया। इस प्रकार भारतीय मत नाट्य को वेद से आविर्भूत मानता है।

2. **संवाद सूक्तों से नाट्य की उत्पत्ति** – कुछ पाश्चात्त्य विद्वान् जिनमें हर्टल, फॉन श्रोएदर, मैक्समूलर एवं सिल्वॉ लेवी आदि प्रमुख है। ये कहते हैं कि ऋग्वेद में कई संवाद सूक्त हैं, जिनके आधार पर संस्कृत नाटकों का प्रादुर्भाव हुआ। इन संवाद सूक्तों में इन्द्र–मरुत् संवाद (ऋ. 1/165, 170), अगस्त्य–लोपामुद्रा संवाद (ऋ.1/179), विश्वामित्र–नदी सवांद (3/33), वसिष्ठ सुदास संवाद (ऋ. 7/83), यम–यमी संवाद (ऋ. 10/10), इन्द्र–इन्द्राणी वृषाकपि संवांद (ऋ. 10/86), पुरूरवा–उर्वशी संवाद (10/95) तथा सरमा–पणि संवाद मुख्य है। ऑल्डेन बर्ग, विन्डिस तथा पिशेल भी यही मानते हैं कि ये संवादात्मक सूक्त नाटकीय थे।

उपुर्यक्त विवरण से स्पष्ट है कि इस प्रकार के संवाद उस समय के यज्ञ के सामाजिक और उल्लासमय अवसर पर जनता के मनोरंजनार्थ प्रस्तुत किये जाते थे तथा उनका प्रचलन था। वस्तुतः ये सभी संवाद उक्ति–प्रत्युक्ति के रूप में

प्रस्तुत किए गए हैं। यह उक्ति–प्रत्युक्ति की पद्धति एक आवेगपूर्ण नाटकीयता है। इन सूक्तों में अनुष्ठान या कर्मकाण्ड से सम्बन्धित किसी क्रियाविधि का उल्लेख नहीं है, इनका कलेवर तथा चरित्र लोककथाओं के अधिक सन्निकट है। जनसामान्य इन्हें बार–बार देखना एवं सुनना पसन्द करते होंगे और ऐसी स्थिति में यज्ञ में उपस्थित जन–समाज नाटक का प्रेक्षक बन जाता होगा।

इस सन्दर्भ में आद्यरंगाचार्य कहते हैं कि संवाद–सूक्त भारतीय नाट्य के उद्गम–स्थल तो नहीं कहे जा सकते परन्तु इतना अवश्य है कि रंगमंच की प्राचीन परम्परा के कारण संवाद–सूक्तों की रचना सम्भव हुई होगी फिर भी इतना कहा जा सकता है कि यज्ञ ने नाटक के लिए एक अनुकूल रचनात्मक परिवेश प्रस्तुत किया तथा आर्यों की जातीय स्मृतियों तथा इतिहास पुरुषों की कथाओं के संचय के लिए आधार तैयार किया।

3. **यूनानी नाटकों से नाट्य की उत्पत्ति** – पाश्चात्त्य विद्वान् विन्दिश एवं वेबर ने भारतीय नाट्य का उद्भव यूनानी नाटकों से सिद्ध किया है। उनके मत के तीन आधार प्रमुख हैं। 1. संस्कृत और यूनानी रूपकों में समानता 2. भारत एवं यूनान का सांस्कृतिक सम्बन्ध 3. संस्कृत में समुपलब्ध रूपकों की नातिप्राचीनता।

विन्डिश कहते हैं – संस्कृत रूपकों का अंकों में विभाजन, प्रस्तावना, उपसंहार, यवनिका शब्द, कथानक का नाटक में निर्वहन, रंगनिर्देश के भेद, विदूषक एवं खलनायक जैसे पात्र आदि यूनानी नाटक की ही देन है।

जर्मनी के प्रसिद्ध विद्वान् एवं समीक्षक पिशेल ने इस बात का प्रबल विरोध किया है। वे कहते हैं – संस्कृत नाटकों में कथावस्तु का विश्लेषण कार्य के आधार पर सुनिश्चित किया जाता है जबकि यूनानी नाटकों में यह नहीं होता। संस्कृत नाटक दुःखान्त नहीं होते जबकि यूनान के रूपकों में दुःखान्त को श्रेष्ठ बताया गया है। संस्कृत नाटकों में काल, स्थान तथा कार्य की अन्वितियाँ नहीं होती है जबकि यूनानी नाटकों में अन्विति त्रय (Unity of time, place and action) का अनिवार्य रूप से पालन होता है। संस्कृत नाटक यूनानी नाटकों से बड़े होते हैं। संस्कृत नाटकों में कोरस अर्थात् समूहगान की व्यवस्था नहीं होती जबकि यूनानी नाटक इसके बिना सम्भव ही नहीं है। ''शेक्सपीयर के प्रसिद्ध नाटक **हेनरी पंचम** में कोरस का बखूबी पालन किया गया है। यवनिका शब्द का अर्थ पटाक्षेप अर्थात् पर्दा गिरना होता है जो कि यूनानी नाटकों में सम्भव ही नहीं है क्योंकि यूनानी नाटक खुले में होते थे जबकि संस्कृत नाटक नाट्यमण्डपों में हुआ करते थे। परदे के अर्थ में प्रयुक्त होने वाले ''जवनिका'' शब्द की व्युत्पत्ति जु धातु से है। जु का अर्थ गति अथवा वेग है। अतः जवनिका का अर्थ है – वह आवरण, जिसमें दौड़कर लोग चले जानये अथवा वह वस्तु जो वेग से सम्पन्न हो या जिसे गति प्राप्त हो अर्थात् तो इधर–उधर हटाई जा सके। जवनिका के लिए जवनी शब्द का प्रयोग भी प्रायः प्राप्त होता है। आर्या सप्तशती में गोवर्धनाचार्य परदे के अर्थ के लिए जवनी शब्द का प्रयोग करते हैं –

क्रीडाप्रसरः प्रथमग तदनु च रसभावपुष्टचेष्टेयम्।
जवनी विनिर्गमादनु नटीव दयिता मनो हरति।।

इस दशा में यवनिका शब्द के प्रयोग को साधु मानकर यूनानी नाटकों के प्रवाहित को भारतीय नाटकों में प्रबाधित करने का दुस्साहस पूर्णतः निराधार एवं कल्पनाप्रसूत है।

4. पुत्तलिका नृत्य सिद्धान्त

'पुत्तलिका' शब्द का अर्थ है कठपुतली। प्राचीन भारत में कठपुतली नृत्य (Puppet Dance) दिखाया जाता था। प्रो. पिशेल कहते हैं कि इस नृत्य को ही सजीव रूप प्रदान करने के लिए इन स्थानों को मंच पर प्रस्तुत करके नाटकों का अभिनय प्रारम्भ हुआ। संस्कृत नाटकों में सूत्रधार और स्थापक इन दो शब्दों के प्रयोग के कारण प्रो. पिशेल इस सिद्धान्त को स्थापित करते हैं। कठपुतली नृत्य में धागों को पकड़ने और उन्हें स्थापित करने का कार्य सूत्रधार एवं स्थापक करते थे। यह न्यायसंगत नहीं है कि एक साधारण नृत्य से रस भाव क्रियात्मक नाटक की उत्पत्ति हो जाय। वस्तुतः भारत में ही इस नृत्य का जन्म हुआ। आज भी राजस्थान में कठपुतली नृत्य पर्यटकों के आकर्षण का केन्द्र बना हुआ है।

5. मृतात्म श्राद्ध सिद्धान्त (वीर पूजा)

इस सिद्धान्त के पोषक डॉ. रिजवे हैं। ये कहते हैं – अपने मृत पूर्वजों के प्रति श्रद्धा प्रदर्शित करने के लिए जिस प्रकार यूनानी दुःखान्त रूपकों का प्रादुर्भाव हुआ, उसी प्रकार भारत में भी अपने दिवंगत वीर पुरुषों के प्रति आदर भाव दिखावे के लिए नाटक अभिनीत होते थे। रामलीला और कृष्णलीला इसी प्रवृत्ति के पोषक दृष्टान्त है। वस्तुतः यह सिद्धान्त भी निराधार है क्योंकि यूनानी दुःखान्त रूपकों के उद्भव से संस्कृत के रसात्मक रूपकों की तुलना कथमपि सम्भव नहीं है। रामलीला और कृष्णलीला उपदेशात्मक मनोरंजन का साधन है, वीर पूजा से सम्पृक्त नहीं। ये लीलाएँ रसात्मक भी है। यूरोपीय विद्वान् भी इस मत को ग्रहण नहीं करते कि वीरपूजा से रूपकों का प्रादुर्भाव हुआ है।

6. उत्सव सिद्धान्त

यूरोप में होने वाले **मे–पोल** नृत्य ने कहा विद्वान् संस्कृत नाट्य का प्रारम्भिक रूप स्वीकार करते हैं। वस्तुतः यूरोप में मई के महीने में वसन्त ऋतु के समय पर अनेक समारोह आयोजित किये जाते हैं। इसमें एक खम्भा गाढ़कर सभी लोग नृत्य एवं अभिनय करते है। इनका मानना है कि इस अवसर पर होने वाले अभिनयों ने प्राचीन काल में रूपकों का स्वरूप ले लिया होगा। भारत में इन्द्रध्वज–पर्व शरद् ऋतु में होता था जो इस नृत्य के समान था। परन्तु यह मत भी नितान्त भ्रामक है कि एक सामान्य नृत्य से नाटक जैसे गम्भीर काव्य प्रकार की उत्पत्ति मानना सर्वथा तर्कहीन है। यह नृत्य अथवा अभिनय भारतीय नाट्य के विकास का अंग मात्र है।

7. छाया नाटक सिद्धान्त

इस सिद्धान्त के समर्थक जर्मन विद्वान् ल्यूडर्स तथा स्टेन कोनो है। ये कहते हैं कि छाया नाटकों में जो छाया चित्रों का प्रदर्शन होता है, वही संस्कृत रूपकों का मूल है। परन्तु यह सिद्धान्त युक्तिसंगत नहीं है क्योंकि संस्कृत में छाया नाटकों की संख्या अत्यन्त नगण्य है। छाया नाटक में पात्र मंच पर उपस्थित नहीं होते, पर्दों पर उनकी छाया ही दिखाई पड़ती है। यदि यह सत्य है तो आचार्य भरत ने नाट्यशास्त्र में

छाया–नाटकों के अभिनय की चर्चा क्यों नहीं की अतः यह सिद्धान्त भी पुष्ट एवं प्रमाणिक नहीं है। दूतांगद नामक छाया नाटक संस्कृत में रचित अवश्य है परन्तु यह इतना प्राचीन एवं महत्वपूर्ण नहीं है।

समीक्षा – वैदिक साहित्य में नाटकीय तत्त्वों पर गहन विश्लेषण किया गया है। ऋग्वेद के संवाद–सूक्तों में धारावाहिक कथा–वस्तु, यजुर्वेद में वाचिक एवं आंगिक अभिनय, सामवेद में संगीत तथा अथर्ववेद में शृंगार रस और वीर रस प्रधानतया प्राप्त होते हैं। भरतमुनि ने नाट्यशास्त्र में इन सभी का उल्लेख किया है। नाट्यशास्त्र का रचनाकाल द्वितीय शताब्दी ई.पू. माना गया है। संस्कृत नाटकों के अभिनय की शुरुआत भी यज्ञादि के अवसरों पर समूहगान, नृत्य तथा धार्मिक क्रिया–कलाप के रूप में हो गई थी। अतः यह निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है संस्कृत नाटकों की समुत्पत्ति सर्वप्रथम भारत में ही हुई।

संस्कृत नाटकों का विकास

प्रिय छात्रों! संस्कृत नाटकों का उद्भव भारतवर्ष में हुआ यह बात आप जान चुके हैं। पाश्चात्त्य विद्वान् पिशेल, लेबी, मैकडानल, मैक्समूलर तथा कीथ आदि ने इस मन्तव्य को स्वीकार किया है।

कालक्रम के अनुसार इनका विकास होता गया। ब्राह्मण, आरण्यक तथा उपनिषद् काल में संस्कृत रूपकों का उल्लेख तो प्राप्त नहीं होता परन्तु इसका यह तात्पर्य वही है कि उनका लोप हो गया हो। उस युग की कोई जानकारी अभी उपलब्ध नहीं है।

रामायण तथा महाभारत में भी नाट्य सम्बन्धी सामग्री अनेक स्थलों पर प्राप्त होती हैं। उस समय के नाटकों में उसकी प्रधानता थी। हास्य रस वाले नाटक भी खेले जाते थे। अयोध्याकाण्ड में कहा गया है कि राजा से रहित जनपद में नट और नर्तक प्रसन्न नहीं रहते –

नाराजके जनपदे प्रहृष्टनटनर्तकाः। – 2/67/15

बालकाण्ड के चतुर्थ सर्ग के निम्न पद्य में शृंगार, करुण, हास्य, रौद्र, भयानक तथा वीरादि रसों से युक्त काव्य के गाने का निरूपण है –

रसैः शृंगारकरुणहास्यरौद्रभयानकैः।
वीरादिभी रसैर्युक्तं काव्यमेतदगायताम्।। 1/4/9

रामायण के ही निम्न पद्य में नाटकीय विधान का समुचित उल्लेख किया गया है –

वादयन्ति तथा शान्तिं लासयन्त्यपि चापरे।
नाटकान्यपरे प्राहुर्हास्यानि विविधानि च।। 2/67/4

महाभारत में भी सूत्रधार, नट, नर्तक तथा गायक आदि का उल्लेख प्राप्त होता है। जैसे –

इत्यब्रवीत् सूत्रधारः सूतः पौराणिकस्तथा। 1.51.15
नाटका विविधाः काव्याः कथाख्यायिककारकाः। 2.12.36
आनर्ताश्च तथा सर्वे नटनर्तकगायकाः। 2.15.13

महाभारत के विराट् पर्व में रंगशाला का भी उल्लेख प्राप्त होता है। हरिवंश पर्व में स्पष्ट उल्लेख है कि वज्रनाभ नामक राक्षस की नगरी में रामायण और ''**कौवेररम्भाभिसार**'' नामक नाटक खेले गए थे।

पाणिनि ने अष्टाध्यायी में दो सूत्रों के माध्यम से क्रमशः नटसूत्र के दो लेखकों, शिलालि तथा कृशाश्व का उल्लेख किया है।

पाराशर्यशिलालिभ्यां भिक्षुनटसूत्रयोः। 4.3.110

कर्मन्दकृशाश्वादिनि। 4.3.111

इससे इस बात का ज्ञान होता है कि पाणिनि के पूर्व ही नाट्य विकसित हो चुका था।

महाभारत में पतंजलि ने कंसवध और बलिबन्ध नामक नाटकों के खेले जाने का उल्लेख किया है। पतंजलि कहते हैं – **ये तावदेते शोभनिका नामैते प्रत्यक्षं कंसं घातयन्ति, प्रत्यक्षं च बलिं बन्धयन्ति इति।**

भरतमुनि ने नाट्यशास्त्र में संस्कृत नाट्य की परम्परा का विस्तृत वर्णन किया है। इनके समय भारतीय नाट्यकला अपने चरमोत्कर्ष पर थी। बौद्ध एवं जैनग्रन्थों में भी नाटकों और नटों का स्पष्ट उल्लेख प्राप्त होता है। वात्स्यायन ने कामसूत्र में स्पष्ट रूप से लिखा है कि नट नागरिकों को नाटक दिखावें और दूसरे दिन नागरिक चाहें तो फिर नाटक देखें, नही तो नटों को विदा करें –

कुशीलवाश्चागन्तवः प्रेक्षणकमेषां दद्युः। द्वितीयेऽहनि तेभ्यः पूजां नियतं लभेरन्। यथाश्रद्धमेषां दर्शनमुत्सर्गो वा।

इन सभी प्रमाणों से यह सिद्ध होता है कि द्वितीय शताब्दी ई.पू. में ही संस्कृत रूपक विकास के अन्तिम पड़ाव पर पहुँच गये थे।

संस्कृत नाटकों के इसी विकास क्रम में कालिदास, भास, भवभूति, शूद्रक तथा विशाखदत्त आदि नाटककार हुए। इसके बाद मुरारि, शक्तिभद्र, राजशेखर, जयदेव, वत्सराज, कृष्णमिश्र, वेदान्तदेशिक, कवि कर्णपूर, गोकुलनाथ, शंखधर आदि प्रमुख है। इसके उपरान्त आधुनिक युग में परशुराम नारायण पाटणकर, पंचानन तर्करत्न, अम्बिकादत्त व्यास, मथुराप्रसाददीक्षित, वेंकटराघवन्, परीक्षित शर्मा, वीरेन्द्र कुमार भट्टाचार्य, अभिराज राजेन्द्र मिश्र, रमाकान्त शुक्ल, राधावल्लभत्रिपाठी तथा रमाकान्त पाण्डेय प्रमुख हैं।

13.2.1 प्रागैतिहासिक काल

संस्कृत नाटकों का यह अंकुरण काल है। इस काल में नाटक स्वाभिव्यक्ति का प्रमुख साधन था। यह वह काल है, जिसकी जानकारी पुरातात्त्विक स्रोतों से प्राप्त होती है। इस समय के इतिहास की जानकारी लिखित रूप में प्राप्त नहीं हुई है। प्रागैतिहासिक काल को प्रस्तर युग भी कहते हैं। इस काल में मानव चित्रकारी और नक्काशी तथा छोटे–छोटे नाटक करना जान चुका था। द्वितीय शताब्दी ई.पू. की एक पाषाण रंगशाला मध्यप्रदेश के सुरगुजा जनपद में अवस्थित सीताबेंगा गुफा में मिली है। यह नाट्यशास्त्र के निर्देशों के अनुसार है। इसी राज्य में भीमबेटका की गुफाओं से भी कुछ चित्र नाट्य–कला के स्वरूप को द्योतित करते हैं। बादामी के प्रागैतिहासिक शैलगुफाओं के चित्र प्रमुख हैं।

सीताबेंगा गुफा भारत की सबसे प्राचीन नाट्यशाला है। ऐसा कहा जाता है कि वनवास काल में राम, लक्ष्मण और सीता यहाँ रुके थे। यह 2300 साल पुरानी है। यह गुफा एक अर्धगोलाकार घाटी के सामने खड़ी एक प्राकृतिक गुफा है। यह चट्टानों के बीच एक ध्वन्यात्मक छेद है जिसके भीतर पत्थर का एक मंच स्थित है। इसके सामने पत्थर से काट कर बनाए हुए करीब 50 आसन देखे जाते हैं, इसमें कुछ गलियारे भी है। इससे यह सिद्ध होता है कि प्राचीन भारत में नाट्यतत्त्व अस्तित्व में था।

बादामी गुफा में शिव विवाह तथा इन्द्रसभा में गायन वादन के दृश्य भित्तियों पर अंकित हैं। इससे यह ज्ञात होता है कि इस काल से ही भारतीय नाटक अपने मूल स्वरूप में आ गया था।

13.2.2 वैदिक काल

वेद, वैदिक वाङ्मय एवं वैदिक संस्कृति ने न केवल बाह्य की उत्पत्ति और विकास में अपना महत्त्वपूर्ण योगदान दिया बल्कि नाट्यशास्त्र जैसे महनीय ग्रन्थ की रचना के लिए भी आधार भूमि तैयार की। अनेक विद्वान् यज्ञ और नाट्य में परस्पर अन्योन्याश्रय सम्बन्ध स्वीकार करते हैं। यज्ञ ललितकलाओं, गायन, वादन आदि मनोरंजक क्रीड़ाओं एवं प्रतियोगिताओं का केन्द्र था। यजुर्वेद में कहा गया है कि गायन के लिए नट को तथा नृत्त के लिए सूत को नियोजित किया जाता था। वाजपेय यज्ञ में वीणा बजाने वाले आचार्यों को **वीणागणगिन्** कहा जाता था। यहाँ के विभिन्न अनुष्ठानों के पीछे नाट्य प्रदर्शन की भावना थी और उपस्थित जनसमुदाय उन्हें देखते समय नाट्याभिनय का आनन्द लेता था।

अथर्ववेद के पृथिवी सूक्त में कहा गया है कि यह वह धरती है जिस पर अगणित मनुष्य गीत गाते हैं तथा नृत्य करते हैं। अग्निष्टोम यज्ञ में प्रस्तुत किया जाने वाला अध्वर्यु–सोमविक्रमी संवाद इस दिशा में महत्वपूर्ण है। सोम की बूटी अध्वर्यु के पास ही है, पर वह संवाद अर्थात् नाटक प्रारम्भ करने के लिए उसे सोमविक्रमी या सोम बेचने का अभिनय करने वाले व्यक्ति को दे देता है। जिससे संवाद में सोमविक्रेता की यजमान या पुरोहितों से जिस प्रकार मोल–तोल के लिए झड़पें होती होगी, उसकी रोचक ढंग से नकल की गयी है।

सोमयाग की महाव्रत विधि में प्रयुक्त होने वाला ब्रह्मचारी और पुंश्चली का संवाद अध्ययन के लिए अत्यन्त रोचक है।

यह संवाद इसलिए भी महत्वपूर्ण है कि यह अपने आप में एक नाटक था। यज्ञविधि का एक हिस्सा होने के साथ–साथ इसकी प्रस्तुति लोगों के सामने प्रदर्शन के लिए होती थी और लोग इसे देखकर आनन्दित होते थे।

यजुर्वेद के पुरुष–सूक्त में कहा गया है कि यज्ञ के अवसर पर सूत को नृत्य के लिए और शैलूष को गाने के लिए नियुक्त करना चाहिए –

'नृत्याय सूतं गीताय शैलूषम्।'

इस प्रकार वैदिक काल में भारतीय नाट्य चरमोत्कर्ष पर था।

13.2.3 महाकाव्यकालीन रंगमंच

महाकाव्य काल में संस्कृत रंगमंच विद्यमान था, इस विषय में तनिक भी सन्देह नहीं है। रामायण, महाभारत, कालिदास के महाकाव्य तथा अन्य महाकाव्यों में रंगमंच के विषय में गहन विमर्श किया गया है। रामायण में नट, नर्तकों के समाज तथा उनके द्वारा किये गये मनोरंजन का वर्णन प्राप्त होता है। अयोध्याकाण्ड में वर्णित है कि ''व्यामिश्र'' ऐसे नाटकों के लिए प्रयुक्त किया गया है जिसमें भाषाओं का सम्मिश्रण रहता था। कथावाचन का उल्लेख भी रामायण में प्राप्त होता है।

महाभारत में रंगमंच से सम्बन्धित विषय बहुतायत में प्राप्त होते हैं। जैसे – प्रेक्षागृह, नटनर्तक, समाज, ग्रन्थिक, जवनिका, इन्द्रमह और यज्ञ के अवसर पर नाट्यप्रयोग, अभिनय, संगीत, पुत्तलिका नृत्य, छायानाट्य तथा नाट्य का भूलोक पर अवतरण इत्यादि।

रंगमंच अथवा प्रेक्षागृह का उल्लेख महाभारत में अनेकत्र मिलता है। कौरव–पाण्डव–राजकुमारों के लिए धनुर्वेद का प्रदर्शन करने हेतु धृतराष्ट्र के द्वारा नाट्य गृह अथवा प्रेक्षागृह का निर्माण किया गया। राजकुमारों का प्रदर्शन आरम्भ होने से पूर्व इस प्रेक्षागार के रंगमंच पर नटों और नर्तकों की उपस्थिति इसी बात को पुष्ट एवं प्रमाणित करती है –

प्रतिगृह्यार्जुनः सर्वमुपभुज्य च पाण्डवः।
सहैव वासुदेवेन दृष्टवान्नटनर्तकान्।। 1/210/10

इस प्रेक्षागार में एक रंगमंच था तथा महिलाओं के उपवेशन के लिए शिविकाओं की व्यवस्था भी थी। यह प्रेक्षागृह मुक्ताजाल, स्वर्ण और मणियों से सुसज्जित था। इसके बीच के स्थल को रंग कहा जाता था तथा रंग पर चलने वाले प्रकाशन को प्रयोग की संज्ञा दी जाती थी –

द्रौपदी एवं दमयन्ती के स्वयंवरों के प्रसंग में भी रंगमंच के विविध पहलुओं के विषय में विचार किया गया है –

दमयन्ती के स्वयंवर के लिए निर्मित प्रेक्षापाद को रंग तथा महारंग कहा गया है। द्रौपदी के स्वयंवर के अवसर पर कई दिनों तक समाज आयोजित हुआ था। समाज उस समय की रंगमंच से जुड़ी गतिविधियों को संगठित करने वाली महत्वपूर्ण संस्था थी। इस समाज के एकत्रित होने के लिए समाज वाट बनाया गया था तो समभूमि पर था तथा जिसके चारों ओर भवन थे। यह समाज कई दिनों तक चला, जिसमें नट–नर्तकों के साथ बन्दी, चारण, वैतालिक तथा सूत आदि भी सम्मिलित थे।

प्रागुत्तरेण नगराद् भूमिभागे शमे शुभे।
समाजवादः शुशुभे भवनैः सर्वतो वृतः।। 1/176/16

राजा विराट् ने राजकुमारियों के लिए एक नर्तनशाला भी बनवायी थी जिसे नर्तनागार और नर्तनगृह भी कहा जाता है। इनका उपयोग नृत्य के अतिरिक्त चुने हुए लोगों के समक्ष नाट्यप्रदर्शन के लिए भी होता था, अतः इसे अभिजात रंगशाला (Intimate Theatre) कहता न्यायसंगत होगा।

अस्त्रविद्या, मल्लयुद्ध तथा स्वयंवर के प्रदर्शन के प्रयोजन से निर्मित प्रेक्षागार आनुषंगिक रूप में नाट्य के लिए भी उपकारक थे। बैठने की व्यवस्था इनमें वृत्ताकार जैसी होती थी तथा प्रदर्शनस्थल प्रेक्षागृह के केन्द्र में रहता था।

नाट्य के उद्भव तथा स्वर्ग से उसके अवतरण के आख्यान का भी प्रकारान्तर से कथन यहाँ किया गया है। इन्द्र अर्जुन से कहते हैं –

नृत्तं गीतं च कौन्तेय चित्रसेनादवाप्नुहि।
तदर्जयस्व कौन्तेय नृलोके यन्न विद्यते।।

यज्ञ वेदिका के निर्माण के लिए सूत्र लेकर सूत अवतरित हुआ तथा नाट्य का भी सूत्रधार बना। अन्य प्रकार के वास्तुविषयक कार्यों को सम्पादित करने के कारण वह स्थपति कहलाया और नाटक की स्थापना का भी स्थापक बना। सूत जाति के इस अनतिरसाधारण वैशिष्ट्य को महाभारत में इस प्रकार प्रस्तुत किया गया है –

स्थपतिर्बुद्धिसम्पन्नो वास्तुविद्याविशारदः।
इत्यब्रवीत् सूत्रधारः सूतः पौराणिकस्तथा।। (आदि पर्व. 51.15)

इन्द्रमह के अवसर पर इन्द्रध्वज बनाया जाता था, महाभारत के शल्य पर्व में इस बात का विशद वर्णन हुआ है। ग्रन्थिक के बारे में भी महाभारत में वर्णन प्राप्त होता है। पुत्तलिका अर्थात् दारुमोषा का उल्लेख यहाँ किया गया है। सूत्र से संचालित लकड़ी की पुतली का उल्लेख दो बार किया गया है।

नाट्य, संगीत तथा नृत्य से सम्बन्धित पारिभाषिक शब्दावली भी महाभारत में प्रयुक्त हुई है। रंगमंच पर दिखाये गए एक खेल के लिए 'प्रेक्षा' शब्द प्रयुक्त किया गया है। रंग तथा समाज शब्दों का प्रयोग प्रेक्षकसमूह के अर्थ में हुआ है। नान्दी शब्द का ग्रहण भी महाभारत से ही किया गया है। पुरोहित आदि राजा ही प्रशस्ति के लिए इसका पाठ करते थे।

इस प्रकार महाभारत का काल भारतीय रंगमंच के लिए सर्वथा समृद्धि कारक रहा।

महाकवि कालिदास भी नाट्यशास्त्रीय क्रिया कलापों के परिप्रेक्ष्य में नाटकों की रचना करते हैं तथा इससे सम्बन्धित विषयों को भी प्रस्तुत करते हैं। नाट्यभारतीय पुरूरवा और उर्वशी की कथा को कालिदास 'विक्रमोर्वशीय' में प्रस्तुत करते हैं। कुमारसम्भाव में शिव और पार्वती के विवाह के पश्चात् उनके सामने अप्सराओं के द्वारा किये जा रहे नाट्य का वर्णन करते हुए कालिदास लिखते हैं –

तौ सन्धिषु व्यंजितवृत्तिभेदं रसान्तरेषु प्रतिबद्धसंगम्।
अपश्यतामप्सरसां मुहूर्त्तं प्रयोगमाद्यं ललितांगहारम्।। 9.91

शिव और पार्वती ने एक मुहूर्त अप्सराओं के उस नाट्य–प्रयोग को देखा, जिसमें सन्धियों में वृत्तियों का भेद अभिव्यंजित किया गया था, विभिन्न रसों के प्रयोग में राग निबद्ध था तथा ललित अलंकारों का प्रयोग किया गया था।

'मालविकाग्निमित्र' में परिव्राजिका के द्वारा मालविका के नाट्य की प्रशंसा में कालिदास ने भरत के अभिनय सिद्धान्तों की सुन्दर व्याख्या की है –

अंगैरन्तर्निहितवचनैः सूचितः सम्यगर्थः,
पादन्यासो लयमनुगतस्तन्मयत्वं रसेषु।

शाखायोनिर्मृदुरभिनयस्तद्विकल्पानुवृत्तौ
भावो भावं नुदति विषयाद् रागबन्धः स एव।।

इस पद्य में आये हुए सूचा, अंकुर, शाखा तथा नृत्त आदि अभिनय के पारिभाषिक शब्द हैं। नाट्यधर्मी परम्पराओं के लिए भी कालिदास ने नाट्येन रूपयित्वा, सूचयित्वा, अभिनीय इत्यादि शब्दों के प्रयोग का सहारा लिया है। इस प्रकार कालिदास ने भारतीय नाट्य के सिद्धान्तों को प्रयोग पक्ष के द्वारा सुदृढ़ कर सामाजिकों के समक्ष प्रस्तुत किया।

13.2.4 पौराणिक काल

पुराण, कला एवं संस्कृति के विश्व कोश हैं। इनको नाट्य, रंगमंच, वास्तु, चित्र, नृत्त, मूर्ति आदि कलाओं का सबसे प्राचीन और सबसे अधिक प्रामाणिक ग्रन्थ माना जाता है। मत्स्यपुराण, विष्णुधर्मोत्तरपुराण, अग्निपुराण, ब्रह्माण्डपुराण, भविष्यपुराण, नारदीयपुराण, गरुड़पुराण तथा स्कन्दपुराण में इन कलाओं के बारे में विस्तृत विवेचन किया गया है। विष्णुधर्मोत्तर पुराण के तृतीय खण्ड के अठारहवें अध्याय से 34वें अध्याय तक नाट्यशास्त्र सम्बन्धी विषयों का गम्भीर एवं उपादेय वर्णन किया गया है। बीसवें से 34 वें अध्यायों को नृत्तसूत्र कहा गया है। इस नृत्तसूत्र में सामान्याभिनय, आंगिक अभिनय, रस तथा भाव आदि विषयों का विस्तार से निरूपण किया गया है। अनुकरण के मूल तत्त्व को व्याख्यापित करते हुए विष्णुधर्मोत्तरपुराणकार कहते हैं – अनुकरण का यह तत्त्व सभी कलाओं में रहता है। मूल तत्त्व के एक होने से सभी कलाओं में पारस्परिकता, अन्तर्निर्भरता और साम्य दृग्गोचर होता है।

नाटक के वैशिष्ट्य के विषय में यहाँ इस प्रकार कहा गया है –

एते कलाकौशलसम्प्रयुक्ताः कार्यास्तथा लोकविधानयुक्ताः।
धर्मार्थकामाद्युपदेशकाश्च हिताय लोकस्य नरेन्द्रचन्द्र।। 17.63

ये नाटक आदि प्रबन्ध विभिन्न कलाओं के कौशल से युक्त लोकविधान से समन्वित तथा धर्म, अर्थ और काम के उपदेशक होते हैं, लोक हित के लिए इनका प्रयोग श्रेयस्कर है। प्रतिमा, चित्र, नृत्त, आतोद्य, तथा गीत के पारस्परिक समन्वय को इस प्रकार इंगित करते हैं –

''चित्रसूत्रं न जानाति यस्तु सम्यङ् नराधिप।
प्रतिमालक्षणं वेत्तुं न शक्यं तेन कर्हिचित्।।
विना तु नृत्तशास्त्रेण चित्रसूत्रं सुदुर्विदम्।
जगतोऽनुक्रिया कार्या द्वयोरपि यतो नृप।।
आतोद्यं यो न जानाति तस्य नृत्तं सुदुर्विदम्।
आतोद्येन विना नृत्तं विद्यते न कथंचन।।
न गीतेन विना शक्यं ज्ञातुमातोद्यमुच्यते।
गीतशास्त्रविधानज्ञः सर्वं वेत्ति यथाविधि।। 2.2.8

रस, भाव, दृष्टि, अंग, उपांग तथा हस्त आदि की अवधारणाएँ चित्र में उसी प्रकार योजित रहती हैं जिस प्रकार नृत्य या नाट्य में। अभिनय के चार प्रकार इस प्रकार कहे गए हैं –

वाचिकश्च तथाहार्यस्त्वांगिकस्सात्त्विकस्तथा।
चतुष्प्रकारोऽभिनयः कीर्तितो नाट्यकोविदैः।। 17.11

विष्णुधर्मोत्तरपुराणकार नाट्य का मूलतत्त्व रस को ही स्वीकार करते हैं। वे कहते हैं –

नाट्यस्य मूलं तु रसः प्रदीष्टो
रसेन हीनं न हि नृत्तमस्ति
तस्मात् प्रयत्नेन रसाश्रयस्य
नृत्तस्य यत्नः पुरुषेण कार्यः।। 30/29

वायुपुराण में भी नाट्यविषयक सिद्धान्तों की चर्चा की गयी है। इसके 24वें तथा 25वें अध्याय में इन सिद्धान्तों का विशद वर्णन उपलब्ध होता है। इसका समय 350 ई. से 530 ई. के बीच माना गया है।

मार्कण्डेय पुराण के 21वें अध्याय में नाट्यशास्त्रीय विवेचन प्राप्त होता है। इस पुराण का समय चौथी से छठी शताब्दी माना गया है।

अग्निपुराण नाट्यचिन्तन का महत्त्वपूर्ण पुराण है। इसमें नाट्यशास्त्रविषयक कारिकाओं पर नाट्यशास्त्र की छाया है। इसका समय सातवीं शताब्दी के बाद का माना जाता है। इसके पाँच अध्याय (337,338,339,340,341) नाट्यशास्त्र की दृष्टि से अत्यन्त उपादेय है। इसके 337वें अध्याय में बारह प्रकार के रूपक, उपरूपक, अर्थप्रकृतियाँ, सन्धि आदि विषय विवेचित हैं, 338वें अध्याय में भाव, नायक तथा नायिका तथा 339वें में वृत्ति, 340 वें में नृत्य और 341वें अध्याय में अभिनय का विवेचन है।

अभिनय के विषय में कहते हैं –

आभिमुख्यं नयन्नर्थान् विज्ञेयोऽभिनयो बुधैः।
चतुर्धा सम्भवः सत्त्ववागंगाहरणाश्रयः।। 341/1

13.2.5 राजसभा का संस्कृत रंगमंच

संस्कृत रंगमंच के आलोक में सर्वप्रथम अमृतमन्थन नामक समवकार का मंचन हुआ, जो अत्यन्त सफल रहा। इसके निर्देशक आचार्य भरत थे। रामायण तथा महाभारत काल में संस्कृत नाटक राजसभा में होते थे। राजा नहुष की राजसभा में अनेक नाटकों का मंचन हुआ। राजमहल में प्रेक्षागार तथा नटमण्डली की व्यवस्था रहती थी। कालिदास के तीनों नाटकों की प्रस्तावना से मालूम पड़ता है कि इन नाटकों का प्रथम अभिनय राजदरबार के सम्मानित पण्डितों, सामन्तों, कलाकारों तथा कवियों की सभा के समक्ष हुआ था, जिसे कवि ने **अभिरूपभूयिष्ठापरिषद्** कहा है। मालविकाग्निमित्र तो राजमहल अथवा राजसभा में चुनौति के रूप में अभिनीत हुआ। इसका प्रथम अभिनय वसन्तोत्सव के समय हुआ। मृच्छकटिक नामक नाटक भी रंगमंच पर अभिनीत हुआ। इस नाटक को देखने का कौशल राजसभा में चर्चा का विषय बना रहा। मृच्छकटिक का सूत्रधार कहता है – **अलमेतेन परिषत्कुतूहलविमर्दकारिणा परिश्रमेण** अर्थात् परिषद् के बढ़े हुए कौतुहल पर ज्यादती करने वाला यह परिश्रम अब रहने दो।

मृच्छकटिक के उपरान्त विशाखदत्त के तीन नाटक मुद्राराक्षस, देवीचन्द्रगुप्त तथा अभिसारिकांवचितक राजसभा में अभिनीत किए गए। विशाखदत्त सामन्त वटेश्वरदत्त के पुत्र तथा महाराज पृथु के पौत्र थे। राजघराने से ताल्लुक रखने के कारण इन्हें

राजसभा के रंगमंच की गहरी समझ थी, यह समझ इनके नाटकों मे अच्छी तरह से देखने को मिलती है। राजपरिषद् के गणमान्य सदस्य इस नाटक को देखने के लिए उत्सुक थे। स्वयं विशाखदत्त ने इस नाटक के मंचन के लिए सूत्रधार को आदेश दिया था।

काव्यविशेषवेदिन्यां परिषदि प्रयुंजानस्य ममापि सुमहान् परितोषः प्रादुर्भवति।

राजा हर्षवर्धन ने भी राजसभा में नाटकों का मंचन करवाया। स्वयं उन्होंने भी नाटकों की रचना की। ऐसा कहा जाता है कि श्रीहर्ष प्रतिवर्ष वसन्तोत्सव पर अपने अधीनस्थ सामन्तों और राजाओं को निमन्त्रित कर उनके सामने अपने दरबार की मण्डली से अपना लिखा नाटक अभिनीत कराते थे। रत्नावली एवं प्रियदर्शिका से इस बात का पता चलता है कि हर्ष के द्वारा इनकी रचना किये जाने के बाद बार–बार उनके जीवन काल में इनका प्रयोग होता रहा होगा।

पल्लव राजा महेन्द्रविक्रमवर्मन् ने मत्तविलास नामक प्रहसन के द्वारा शिष्ट हास्य एवं व्यंग्य को प्रस्तुत किया। इसका अभिनय भी राजसभा में सर्वप्रथम हुआ। इसकी प्रस्तावना में सूत्रधार नटी को आश्वासन देता है कि अभिनय यदि अच्छा रहा तो परिषद् उन्हें अच्छा ईनाम देगी –

''भवति! किमिव न युज्यते। त्वत्प्रयोगपरितोषिता परिषदनुग्रहीष्यतीति।''

आचार्य बोधायन द्वारा लिखित **भगवदज्जुकम्** नामक प्रहसन भी सामाजिक विसंगति और विरूप को प्रदर्शित करने के लिए रंग–सृष्टि के अनुकूल रहा। इसी क्रम में दसवीं शताब्दी में जन्में कुलशेखरवर्मन् ने केरल के रंगमंच की समस्त व्यवस्थाओं को सुगठित कर **तपतीस्वयंवर** तथा **सुभद्राधनंजय** नामक दो नाटकों की रचना की। इन दोनों नाटकों का राजसभा के रंगमंच पर अभिनय हुआ तथा दरबार के अधिकांश लोगों ने इसमें पात्र भूमिका का निर्वहण किया।

हर्ष के समय पाटलिपुत्र के राजदरबार में राजा कल्याणवर्मा के राज्याभिषेक के अवसर पर विज्जिका का लिखा कौमुदी महोत्सव नामक ऐतिहासिक कथा पर आधारित नाटक मंचित किया गया। नाटककार राजशेखर का जीवन तीन राजाओं के आश्रय में व्यतीत हुआ। राजसभा के रंगमंच तथा राजसी वातावरण के दर्शन इनके नाटकों में सूत होते हैं। संस्कृत तथा प्राकृत में इन्होंने चार नाटक लिखे 1. बाल रामायण 2. बाल भारत 3. कर्पूरमंजरी 4. विद्धशालभंजिका।

विद्धशालभंजिका नाटिका युवराजदेव प्रथम के दरबार में खेली गयी। बालभारत नामक नाटक राजा महीपालदेव के राजदरबार में मंचित हुआ। इन्हीं राजा महीपालदेव की राजसभा में क्षेमीश्वर द्वारा विरचित चण्डकौशिक नामक नाटक मंचित हुआ।

वत्सराज कालंजर ने छह नाटकों का प्रणयन किया। 1. किरातार्जुनीय व्यायोग 2. कर्पूरचरित 3. हास्यचूड़ामणि 4. रुक्मिणीहरण 5. त्रिपुरदाह 6. समुद्रमन्थन। इनमें से पाँच का प्रदर्शन राजा परमर्दिदेव की सभा में तथा किरातार्जुनीय व्यायोग का प्रदर्शन उसके पुत्र राजा त्रैलोक्यमल्लदेव के सामने हुआ।

वस्तुतः राजसभा का रंगमंच राजदरबार से संचालित संस्था नहीं थी। उसका मुख्य केन्द्र था नगर का एक रसिक नागरिक जिसने सम्पन्न लोगों के अनुरूप विविध मनोरंजक क्रीड़ाओं का आविष्कार किया नाटक के अन्य पात्रों जैसे विदूषक, विट तथा

चेट आदि के साथ तथा जो अपने आप में एक नाटकीय दिनचर्या व्यतीत करता था। नागरिक की भावात्मक और कलात्मक आवश्यकताओं के अनुरूप ही गणिका की संस्था ने जन्म लिया था। कौटिल्य के समय से ही गणिकाओं पर अनुशासन, उनकी शिक्षा और जीविका की व्यवस्था के मानक स्थिर होने लगे थे। मृच्छकटिक में वसन्तसेना के सम्बन्ध में भी कहा गया है कि उसमें विभिन्न कलाओं की शिक्षा प्राप्त की थी तथा रंगमंच पर पहली बार उतरते ही उसने दर्शकों को मन्त्रमुग्ध एवं मोहित कर दिया था। गणिकाओं का व्यवस्थापन किसी न किसी रूप में राजदरबार से भी जुड़ा हुआ था। राजदरबार में आदर एवं सम्मान के साथ गणिकाएँ की जाती थी, उनका वैदुष्य, विदग्धता तथा कला–निपुणता सब कुछ चर्चा का विषय था। गणिकाएँ स्वयं अपनी ओर से भी नृत्य तथा नाट्य आदि के उत्सव करवा देती थी। दशकुमारचरित में ही रागमंजरी पंचवीर गोष्ठी पर संगीतक का आयोजन करवाती हैं।

राजदरबार से लेकर गणिकाओं, श्रेष्ठियों तथा नागरिकों तक फैले इस रंगमंच का भौतिक स्वरूप स्थिर और सर्वथा निर्धारित नहीं रह पाया था। राजमहल की रंगशाला राजपरिवार की आवश्यकता तथा प्रासाद के स्थापत्य के अनुसार छोटी–बड़ी हो सकती थी। गणिकाएँ उपर्युक्त विवरण के अनुसार अपने प्रदर्शन विभिन्न स्थानों पर कर देती थी। सम्पन्न लोग अपनी आवश्यकता, रुचि और दृष्टि के अनुसार अलग–अलग प्रकार की रंगशालाएँ बनवा सकते थे। दशकुमारचरित में **कृत्रिमशैलगर्भोत्कीर्ण नानामण्डपप्रेक्षागृह** का चतुर्थ उच्छ्वास में उल्लेख आया है।

राजसभा का संस्कृत रंगमंच अभिजातवर्ग के लिए था। यह वर्ग ही अपने मनोरंजन की पूर्ति के लिए नाटकों का मंचन करवाता था। राजा से लेकर सामन्त, दरबारी, श्रेष्ठी इत्यादि इसमें सम्मिलित होते थे।

इस प्रकार राजसभा का संस्कृत रंगमंच आधुनिक रंगमंच की पृष्ठभूमि की आधारशिला बनकर समाज में उभरा।

बोध प्रश्न/अभ्यास प्रश्न

1. ''अवस्थानुकृतिर्नाट्यम्'' इस वाक्य के वक्ता हैं –

   (i) आचार्य मम्मट (ii) आचार्य वामन (iii) आचार्य धनंजय (iv) आचार्य राजशेखर

2. मिलान करें –

क –	ऋग्वेद	1. रसतत्त्व
ख –	यजुर्वेद	2. संगीत
ग –	सामवेद	3. अभिनय
घ –	अथर्ववेद	4. पाठ्य

3. रिक्त स्थानों की पूर्ति करें –

   i) .... भारत की सबसे प्राचीन नाट्यशाला है।

   ii) जवनिका शब्द .... धातु से बना है।

   iii) वाजपेय यज्ञ में वीणा बजाने वाले आचार्यों को .... कहा जाता है।

   iv) अभिसारिकावंचितक नामक नाटक .... की रचना है।

4. त्रिपुरदाह नाटक के रचयिता हैं –

   (i) कालिदास (ii) अभिराज राजेन्द्र मिश्र (iii) महेन्द्रवर्मन (iv) वत्सराज कालंजर

अभ्यास प्रश्न

1. ''राजसभा को संस्कृत रंगमंच'' इस विषय पर प्रकाश डालिए।
2. नाट्योत्पत्ति सिद्धान्तों का विस्तार से वर्णन करिए।

13.3 सारांश

प्रिय छात्रों! इस इकाई में आपने नाट्य के वैशिष्ट्य तथा नाट्योत्पत्ति के सात सिद्धान्तों जिनमें भारतीय मत, संवाद सूक्तों से नाट्य की उत्पत्ति, यूनानी नाटकों से नाट्य की उत्पत्ति, पुत्तलिका नृत्य सिद्धान्त, मृतात्म श्राद्ध सिद्धान्त, उत्सव सिद्धान्त तथा छाया नाटक सिद्धान्त हैं, इनके विषय में विस्तार से ज्ञान प्राप्त किया। नाट्योत्पत्ति के सिद्धान्तों में भारतीय मत की प्रमाणिकता के विषय में आपने अध्ययन किया। इसके बाद संस्कृत नाटकों के विकास के क्रम में रामायण, महाभारत, पाणिनि, पतंजलि तथा नाट्यशास्त्र के उद्धरणों से प्राप्त इतिहास को आपने जाना। संस्कृत नाटकों के विकास के इस क्रम में प्रागैतिहासिक काल, वैदिक काल, महाकाव्यकालीन रंगमंच के विषय में आपने विस्तृत अध्ययन किया। महाकाव्यकालीन रंगमंच के अन्तर्गत कुमारसम्भव तथा रघुवंश आदि के नाट्य सम्बन्धी विषय के बारे में आपने जाना।

इसके उपरान्त संस्कृत नाटक के पौराणिक कार्य के अन्तर्गत हैं – अग्निपुराण, मार्कण्डेय पुराण, नारदीय पुराण, गरुड़ पुराण तथा स्कन्द पुराण में नाट्य तत्त्व के विषय में आपने ज्ञान प्राप्त किया।

इसी क्रम में राजसभा के संस्कृत रंगमंच के विषय में विभिन्न विद्वानों के अनुसार कहे गये विविध तथ्यों को आपने जाना। इसमें शाकुन्तल, मालविकाग्निमित्र, मृच्छकटिक, विशाखदत्त, देवीचन्द्रगुप्त, मत्तविलास प्रहसन तथा भगवदज्जुक का लाभ लिया जा सकता है। वस्तुतः राजसभा का रंगमंच सुदृढ़ एवं सुगठित था जिसमें उच्च वर्ग के लोगों का प्रवेश सुकर था। संस्कृत साहित्य के अनेक नाटक, प्रहसन तथा डिम आदि इन राजसभाओं में मंचित किए गए। इस प्रकार आपने संस्कृत नाट्य एवं रंगमंच के इतिहास तथा विकास के विषय में ज्ञान प्राप्त किया।

13.4 शब्दावली

इन्द्रध्वज – इन्द्र का अध्यक्षता में संचालित एक पर्व।

हेनरी पंचम – शेक्सपीयर का प्रसिद्ध नाटक।

जवनिका – नाटक में प्रयुक्त किया जाने वाला पर्दा।

मेपोल – यूरोप में होने वाला विशिष्ट नृत्योत्सव। यह मई के महीने में आयोजित होता था।

बादामी गुफा – कर्नाटक में स्थित एक गुफा।

व्यामिश्र – अनेक भाषाओं में मिश्रित संस्कृत नाटक।

स्थापक – नाटक की स्थापना करने वाला।

मलविका – मालविकाग्निमित्र नामक नाटक की नायिका। अग्निमित्र की प्रेयसी।

सुभद्राधनंजय – केरल के प्रख्यात नाटककार कुलशेखरकर्मन् के द्वारा विरचित नाटक।

13.5 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. संस्कृत नाटक समीक्षा – प्रो. इन्द्रपाल सिंह 'इन्द्र' 1960 ।
2. भारतीय नाट्यशास्त्र की परम्परा और दशरूपक – डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी, 1963 ।
3. भारतीय रंगमंच का विवेचनात्मक इतिहास, पुस्तक संस्थान, कानपुर 1977 ।
4. भारतीय नाट्य–स्वरूप और परम्परा, संस्कृत परिषद्, सागर विश्वविद्यालय, सागर, 1988 ।
5. नाट्यम् – सम्पादक, राधावल्लभ, नाट्य परिषद्, सागर विश्वविद्यालय, सागर।
6. The Indian Theatre, National Book Trust, Delhi, 1982, Adyarangadhyay
7. नाट्यशास्त्र – बाबूलाल शुक्ल शास्त्री, चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, 1983।

13.6 बोध/अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. (iii) आचार्य धनंजय
2. क–4, ख–3, ग–2, घ–1
3. (i) सीताबेंगा गुफा।
   (ii) जु
   (iii) वीणागणगिन्
   (iv) विशाखदत्त
4. (iv) वत्सराज कालंजर

इकाई 14 रंगमंच के कतिपय अन्य प्रकार

इकाई की रूपरेखा

14.0 उद्देश्य

14.1 प्रस्तावना

14.2 रंगमंच के कतिपय अन्य प्रकार

- 14.2.1 मन्दिरों का संस्कृत रंगमंच
- 14.2.2 खुला रंगमंच
- 14.2.3 लोक रंगमंच
- 14.2.4 व्यापारिक रंगमंच
- 14.2.5 संस्कृत रंगमंच की वैश्विकता

14.3 सारांश

14.4 शब्दावली

14.5 कुछ उपयोगी पुस्तकें

14.6 बोध/अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

14.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप :

- रंगमंच के विभिन्न प्रकारों के बारे में ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।
- मन्दिरों के संस्कृत रंगमंच के विषय में अध्ययन कर सकेंगे।
- खुला रंगमंच के बारे में विस्तार से जान सकेंगे।
- लोक रंगमंच तथा व्यापारिक रंगमंच से परिचित हो सकेंगे।
- संस्कृत रंगमंच की वैश्विकता के विषय में अध्ययन कर सकेंगे।

14.1 प्रस्तावना

इससे पूर्व आपने नाट्य की उत्पत्ति तथा विकास के सन्दर्भ में संस्कृत नाट्य के प्रागैतिहासिक काल, वैदिक काल तथा पौराणिक काल के विषय में विस्तार से अध्ययन किया। इस इकाई में संस्कृत रंगमंच के अन्य प्रकारों के विषय में आप ज्ञान प्राप्त करेंगे।

वस्तुतः रंगमंच शब्द अर्वाचीन है। इस शब्द का उल्लेख नाट्यशास्त्र एवं अन्य नाट्य ग्रन्थों में उपलब्ध नहीं होता है। नाट्यशास्त्र में वर्णित रंगशीर्ष एवं रंगपीठ ही रंगमंच के रूप में परिवर्तित हो गया है। रंगमंच शब्द में रंग कहने मात्र से ही सम्पूर्ण रंगमंच का बोध हो जाता है, अतः रंगमंच में मंच शब्द अनावश्यक सा प्रतीत होता है। आचार्य रामचन्द्र–गुणचन्द्र ने रंग शब्द का प्रयोग नाट्यमण्डल के अर्थ में किया है –

रंगमंच अपने सीमित अर्थ में वह स्थल समझा जा सकता है, जहाँ नाट्याभिनय होता है और अपने व्यापक अर्थ में वह सम्पूर्ण नाट्यमण्डपल या रंगशाला का वाचक माना जा सकता है।

नाट्यशास्त्र के अनुसार रंगमंच का अपरनाम – प्रेक्षागृह या रंगशाला है। प्रारम्भ में भारतीय नाटकों का मंचन आसमान के नीचे खुले मैदान में होता था, जिसको देखने में किसी प्रकार का प्रतिबन्ध नहीं था, परन्तु विघ्नों के उदय ने नाट्याचार्यों को बाध्य किया कि वे नाट्यप्रयोगों को खुले मैदानों से हटाकर बंद स्थानों में ले जायँ। तब ब्रह्मा की आज्ञा से विश्वकर्मा ने प्रेक्षागृह का निर्माण किया।

रंगमंच के निर्माण के सन्दर्भ में आचार्य भरतमुनि की वैज्ञानिक तथा व्यावहारिक पटुता का उज्ज्वल दृष्टान्त प्राप्त होता है –

वे कहते हैं –

यश्चाप्यस्यगतो भावो नानादृष्टिसमन्वितः।
स वेश्मनः प्रकृष्टत्वाद् व्रजेदव्यक्ततां पराम्।
यस्मात् पाठ्यं च गेयं च तत्र श्रव्यतरं भवेत्।
प्रेक्षागृहाणां सर्वेषां तस्मान्मध्यममिष्यते।।

वेष, आच्छादन और परभावकरण ये तीन रंगमंच की प्रक्रिया के महत्त्वपूर्ण सोपान है। नाट्य मण्डप को यदि दो समान भाग में बाँटे तो 48–48 फुट के दो हिस्से होंगे। पूर्व भाग दर्शकों के लिए प्रेक्षागृह और पश्चिमार्ध रंग मण्डप होगा। रंग मण्डप को पुनः दो समभागों में बाँटे (24/24) फुट के तो पूर्व भाग रंगपीठ अर्थात् रंगशीर्ष और पश्चिम भाग नेपथ्य होगा। रंगमंच का अग्रभाग 12 फुट रंगपीठ और पीछे का रंगपीठ के तल 12 अंगुल ऊँचा भाग 12 फुट रंगशीर्ष होगा। चौड़ाई में रंगपीठ 24 फुट के दोनों ओर 12–12 फुट की मत्तवारणी होगी और इसका तल भी रंगपीठ से 12 अंगुल ऊँचा होगा। यह संस्कृत रंगमंच कल्पनाशीलता, निष्ठा और संवेदनशीलता का रंगमंच रहा है। रंगमंच कोई गढा–ढला हुआ साँचा नहीं है जिसमें नाटक को दबकर विकृत हो जाना पड़ेगा। वह तो नाटक की निराकार आत्मा को रंग–रूपों में साकारता देने का साधन मात्र है।

आचार्य भरतमुनि तीन प्रकार के रंगमंच का वर्णन करते हैं, जिनमें 1. विकृष्ट अर्थात् लम्बाकार 2. चतुस्र अर्थात् चौकोर 3. त्र्यस्र (त्रिकोण)। इन तीनों में से विकृष्ट को अधिक उपयुक्त प्रेक्षागृह माना जाता है। विकृष्ट नाट्यमण्डप न केवल राजाओं के लिए बनते थे प्रत्युत जनसाधारण के लिए भी बनते थे। जिसमें व्यावसायिक रंगमंच एक दूसरे से स्पर्धा करते थे। रंगमंच के इतिहास में पहली बार ऐसी रंगशाला के दर्शन होते हैं जहाँ ध्वनि और दृश्य, दोनों को समान महत्त्व दिया गया है। संस्कृत रंगमंच दर्शकों की कल्पना और अनुमान पर पूर्णतः आश्रित है। वहाँ दृश्यसम्बन्ध का प्रयोग नहीं होता बल्कि सूत्रधार अथवा अभिनेता के कथन, मुद्राओं और गतियों से ही दृश्य या दृश्य परिवर्तन का आभास कराया जाता है। इस रंगमंच में न अभिनय पक्ष बोझल होता है और न दर्शकों को विस्मृत किया जाता है। इसका सारा विस्तार विभावानुभाव में उसका विभाजन, स्थायी, संचारी, उद्दीपन तथा सात्त्विक भावों की कल्पना, अभिनय की प्रधानता तथा दर्शकों के रसाभिव्यक्ति को आधार मानकर होता है। कथावस्तु का विभाजन, क्रम विकास तथा उसकी अवस्थायें, अर्थप्रकृतियाँ और सन्धियाँ कथावस्तु के संगठन को तो सँभालते ही हैं, उसके प्रदर्शन पक्ष को भी निर्धारित करते हैं। इस

प्रकार भारतीय रंगमंच के विविध पक्षों को समेटते हुए इसके विस्तृत स्वरूप एवं प्रकार के विषय में आप जानेंगे।

14.2 रंगमंच के कतिपय अन्य प्रकार

रंगमंच आचार्य भरत की व्यावसायिक प्रतिभा का उत्तम निदर्शन है। यह रंगमंच सुव्यवस्थित तथा यथार्थवादी एवं दर्शकों के लिए सर्वोत्तम है। रंगमंच के कतिपय अन्य प्रकारों में खुला रंगमंच, व्यापारिक रंगमंच, लोक रंगमंच तथा मन्दिरों का रंगमंच तथा राजसभा का रंगमंच आदि शामिल है। वस्तुतः भारतीय रंगमंच प्रमुखतः दो भागों में विभाजित था। पहला धार्मिक तथा दूसरा लौकिक या धर्मनिरपेक्ष। धार्मिक रंगमंच में धार्मिक कथाओं का प्रदर्शन किया जाता है, जो गायन, सस्वर वाचन और नृत्य पर आधारित था। लोक रंगमंच में प्रेम और वीरता से लेकर सामाजिक और सांस्कृतिक परम्पराओं तक आधारित धर्मनिरपेक्ष विषय थे। लोक रंगमंच को जगदीशचन्द्र माथुर परम्पराशील नाट्य कहते हैं। परम्पराशील रंगमंच की मुख्यतः दो प्रकृतियाँ हैं पहली धार्मिक, जिसमें रासलीला, रामलीला, यक्षगान आदि शैलियाँ हैं। दूसरा है लौकिक जिनमें स्वांग, खयाल, नौटंकी तथा नाचा आदि हैं।

औपनिवेशिक काल में अंग्रेजों द्वारा अपने मनोरंजन के लिए आयोजित रंगमंच, शासन व्यवस्था, शिक्षा और प्रिन्ट जैसे आविष्कारों के प्रभाव तथा रंगमंच में प्रोसेनियम और शेक्सपियर के परिचय से एक नितान्त भिन्न रंगमंच का आविर्भाव हुआ, जिसकी परम्परा भारतीय रंगमंच में नहीं थी।

इसके उपरान्त भारत में व्यावसायिक रंगमंच का प्रादुर्भाव हुआ इसमें एक पारसी रंगमंच था जिसके मालिक पारसी थे। इन्होंने भारत के विभिन्न कोणों में कम्पनियाँ बनाई जो व्यवसाय के लिए प्रस्तुति करती थी और देश के विभिन्न हिस्सों में घूमती थी। इसके बाद बांग्ला और मराठी में अभिजात्यों के संरक्षण में रंगमंच का विकास हुआ। औपनिवेशक आधुनिकता वाले रंगमंच की शैली यथार्थकारी थी। रवीन्द्रनाथ टैगोर तथा जयशंकर प्रसाद ने अपने नाटकों के माध्यम से यथार्थवादी शैली का विकल्प तलाशा और नाटक भारतीय प्रदर्शन शैली में लिखे। स्वातन्त्र्योत्तर भारत में राष्ट्रीय पहचान निर्मित करने में रंगमंच की भूमिका को भी महत्त्वपूर्ण मानकर राष्ट्रीय रंगमंच की स्थापना हुई। भारतीय जननाट्य संघ (इप्टा) ने अपने अखिल प्रयासों से अखिल भारतीय रंगमंच को खड़ा किया। नब्बे के बाद भारतीय रंगमंच में स्त्री निर्देशकों का काम भी उभरा जिन्होंने Zender sansitization (लिंग समानता) की प्रक्रिया को दिखाने के लिए रंगमंच पर शिल्प और वस्तु को बदला। इसी क्रम में सफदर हाशनी ने नुक्कड़ नाटक को राजनीतिक ओज दिया।

इस प्रकार भारतीय रंगमंच विविध रंग छवियों का सम्मिश्रण है जिसमें संस्कृत है तो उसके बरक्स परम्पराशील भी है। भारतीय रस की केन्द्रीयता है तो पाश्चात्य संघर्ष है। परम्परा से नितान्त भिन्न औपनिवेशिक रंगमंच है तो अपनी परम्परा से जुड़ने का प्रयास करता उत्तर औपनिवेशिक रंगमंच भी है। इसमें अभिजात का मनोरंजन है तो जनप्रतिरोध का स्वर भी है। इसमें भावानुकीर्तन तथा भावधर्मिता का वैशिष्ट्य है।

14.2.1 मन्दिरों का संस्कृत रंगमंच

संस्कृत नाटक बहुत प्राचीन काल से मन्दिरों में मंचित होते आये हैं। विष्णुधर्मोत्तरपुराण के साक्ष्य के अनुसार ईसा की प्राथमिक शताब्दियों में मन्दिर रंगमंच की गतिविधियों के

सक्रिय केन्द्र बनने लग गये थे। मन्दिर के रंगमंच का अपना एक पृथक् तन्त्र व्यवस्थित रूप में खड़ा हो गया था। संगीत, नृत्य तथा नाटक आदि कलाओं के शास्त्रों का अध्ययन–अध्यापन तथा उनका प्रयोग मन्दिर की व्यवस्था का अंग बन गया था। यह आवश्यक नहीं था कि मन्दिरों में होने वाले नाटकों का चरित्र साम्प्रदायिक या धार्मिक ही रहता हो। हिन्दू धर्म सहित विभिन्न साधुओं के द्वैध और उनके पाखण्ड पर तीखा व्यंग्य करने वाला मत्तविलास इस रंगमंच पर बराबर अभिनीत होता रहा। यह प्रहसन केरल के मन्दिरों में अत्यन्त लोकप्रिय रहा। पारम्परिक विधि से इसका मंचन अभी भी जीवन्त है।

वस्तुतः राजसभा के रंगमंच से कुछ नाटककार कन्नी काटते थे क्योंकि राजसभा केवल आभिजात्य वर्ग के लिए ही नाटक प्रस्तुत करने की अनुमति देती थी और कुछ उसकी कार्य शैली को पसन्द नहीं करते थे। ऐसे नाटककारों को मन्दिरों की इस परम्परा ने जीवित रखा। भवभूति जैसे महान् नाटककार ने अपने प्रसिद्ध नाटक 'मालतीमाधव' को मन्दिर के खुले मंच में अभिनीत किया। इस नाटक की प्रस्तावना से ज्ञात होता है कि मन्दिर में अभिनय करने वाली नटमण्डली से भवभूति की मित्रता थी और सूत्रधार तथा उसके साथी उन्हें आदर तथा सम्मान से देखते थे। भवभूति के तीनों नाटक कालप्रियनाथ के मन्दिर में यात्रा उत्सव के अवसर पर खेले गये। रामायण की यह कहानी लोगों में अत्यन्त उत्साह के साथ प्रसृत रही तथा अत्यन्त लोकप्रिय रही। भवभूति के नाटकों का दर्शक समाज इनके नाटकों को देखने के लिए लट्टु रहता था। भवभूति के बाद नवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में मन्दिर के रंगमंच पर अपने नाटक का अभिनय कराने वाले दूसरे नाटककार मुरारि हुए। उन्होंने 'अनर्घराघव' का अभिनय पुरुषोत्तम के यात्रा महोत्सव पर करवाया।

इसकी प्रस्तावना से ज्ञात होता है कि नाटक से पहले अभिनय के पूर्व यात्रा महोत्सव में कुछ अन्य नाटक भी खेले जा चुके थे। जनता वीर, बीभत्स तथा ओज आदि से समन्वित नाटक से ऊब चुकी थी। इस अवसर पर सुचरित नामक सूत्रधार ने बिना पूर्व सूचना के यह नाटक खेलकर जनता को पुनः प्रसन्न करने का बीड़ा उठाया। प्रस्तावना में सूत्रधार कहता है – मैं विदेश से आया हूँ और इस समय मेरी मण्डली के सब लोग मेरे साथ नहीं हैं इसलिये कैसे नाटक कर सकूँगा यह शंका आप लोगों को नहीं होनी चाहिये, क्योंकि आपका आराधन करने की मेरी वृत्ति ही है। सब सामग्री जुटवा देगी – **अलमतिविस्तरेण। भो भो लवणोदवेलावनालीतमालतरुकन्दलस्य त्रिभुवनमौलिमण्डलमहानीलमणेः कमलाकुचकलशकेलिकस्तूरिकापत्रांकुरस्य भगवतः पुरुषोत्तमस्य यात्रायामुपस्थानीयाः सभासदः, कुतश्चिद्दीपादागतेन कलहकन्दलनाम्ना नित्यं किलायमुद्वेजितो लोकः। तत्कस्यचिदभिमतः रसभावभाजः प्रेक्षणकस्य प्रयोगानुज्ञया नाट्यवेदोपाध्यायबहुरूपान्तेवासी मध्यदेशीयः सुचरितो नाम भरतपुत्रोऽहमनुगृह्ये।**

वस्तुतः मन्दिरों का हमारी नाट्यकला से घनिष्ठ सम्बन्ध बहुत प्राचीन समय से है। दक्षिण भारत के कई मन्दिरों में नाट्यशास्त्र में निरूपित करण तथा अन्य अभिनय मुद्राओं का शास्त्रीय शुद्धता के साथ उत्कीर्ण किया जाना इस बात का प्रमाण है। चिदम्बरम् के मन्दिर में भरत के द्वारा बताये गये 10 करणों की न केवल मूर्तियाँ बनायी गयी हैं अपितु प्रत्येक मूर्ति के नीचे नाट्यशास्त्र में सम्बन्धित श्लोक भी उत्कीर्ण किया गया है।

मन्दिरों में रंगमंच तथा नटमण्डप होने की सूचना वर्तमान में कई मन्दिरों में इनके होने के प्रमाण से प्राप्त हो जाती हैं। इन मन्दिरों में बेलूर का चन्नकेश्वर मन्दिर, पुरी,

कोणार्क, भुवनेश्वर, मणिपुर, खजुराहो तथा गोवा प्रमुख हैं। इन मन्दिरों में संबद्ध मन्दिर के यात्रामहोत्सव पर नाटक का आयोजन होता था। कभी कभी इन आयोजनों में राजदरबार का भी हस्तक्षेप रहता था।

चण्डकौशिक नामक नाटक राजा हरिश्चन्द्र की पौराणिक कथा को प्रस्तुत करता है। यह नाटक भी राजदरबार के सहयोग से मन्दिर में ही संचालित एवं अभिनीत हुआ। इसी तरह 11वीं शताब्दी के चंदेल राजा कीर्तिवर्मा की चेदि राजा कर्ण पर विजय के समारोह के अवसर पर कृष्णमिश्र का प्रबोधचन्द्रोदय नामक नाटक लिखा गया। 11वीं शताब्दी में महाकवि बिल्हण की कर्णसुन्दरी नाटिका, जो राजा कर्ण के तत्कालीन इतिहासघटित कर्तृत्व सम्बद्ध है, राजा कर्ण के ही संपत्कर नामक मन्त्री के द्वारा आयोजित भगवान् नागेश के यात्रा महोत्सव में खेली गयी थी। यह आयोजन श्रीशान्त्युत्सवदेवगृह नामक मन्दिर में सम्पन्न हुआ। वर्तमान में यह स्थान गुजरात के अनहिलपट्टन में बताया गया है।

वस्तुतः मन्दिरों का संस्कृत रंगमंच अत्यन्त समृद्ध स्थिति में रहा है। इसका सम्पूर्ण प्रबन्ध मन्दिर प्रशासन ही करता था। बड़े मन्दिरों में विशाल प्रेक्षागृह होने के भी प्रबल प्रमाण प्राप्त होते हैं। तत्कालीन जनता भी इन मन्दिरों में नाटक देखने के लिए अत्यन्त लालायित रहती थी। सभी वर्ग के लोगों का प्रवेश यहाँ सुकर था। ''कुडियाट्टम'' अर्थात् साथ मिलकर नाटक खेलना अभी भी केरल के मन्दिरों में यह प्रदर्शन बड़ी धूमधाम से किया जाता है। नाट्यशास्त्र के अंगहार, उनकी अभिनयमुद्रायें, चारियों का अचूक और सर्वथा व्यवस्थित प्रयोग इसकी विशेषता है। इसमें विदूषक सबसे लोकप्रिय पात्र होता है।

इस प्रकार मन्दिरों का संस्कृत रंगमंच भारतीय नाट्य संस्कृति का आधार–स्तम्भ है।

14.2.2 खुला रंगमंच

खुला रंगमंच से तात्पर्य मुक्त आकाश के नीचे अभिनय करना है। इसे मुक्ताकाश रंगमंच भी कह सकते हैं। इसके प्रयोक्ता भी आचार्य भरत ही है। इस रंगमंच पर भरत ने छोटे–छोटे नाटक प्रस्तुत किये। सूत जाति के लोग नट, नर्तक, चारण, मागध, कुशीलव, ग्रन्थिक आदि मुक्ताकाश मंच के नीचे नाटक प्रस्तुत करते थे।

ये लोग आँगन, चौपाल, पूजा स्थान और सड़कों पर अभिनय करते थे। देवयात्रा तथा राजयात्रा में इस रंगमंच का विकास हुआ। मूलतः यह रंगमंच ग्रीक रंगमंच था। इस रंगमंच का सबसे बड़ा लाभ यह है कि यह सरल होता है। इसे परिस्थिति के अनुरूप ढाला और सजाया जा सकता है। इसमें अभिनेता और प्रेक्षक के बीच सीधा सम्बन्ध स्थापित होता है। इसमें सत्याभास के लिए अधिक गुंजाइश नहीं होती।

वस्तुतः खुला रंगमंच प्रारम्भिक रंगमंच है। यात्रा, रामलीला, रासलीला तथा तमाशा आदि लोकनाट्यों के लिए खुले मंच की ही आवश्यकता होती है। इस मंच में मध्य में तने एक मुक्त मण्डप मंच, अनेक मंचों या चबूतरों अथवा प्रतीक रूप से स्थिर नाट्यस्थलों पर घूम–घूम कर अभिनय किया जाता है। सूत्रधार अपनी प्रतिभा से गीतों और कविताओं के माध्यम से एक दूसरे प्रसंग को सम्बद्ध कर देता है। इस प्रकार यह मंच भारतीय नाट्य के लिए नये वातायन खोलता है।

14.2.3 लोक रंगमंच

लोक रंगमंच का अभिप्राय उस तत्त्व से है जो सम्पूर्ण रूप से लोक से जुड़ा हो। वस्तुतः रंगमंच लोक का ही प्रतिनिधित्व करता है, परन्तु लोक के साथ तादात्म्य सम्बन्ध स्थापित कर यह रंगमंच एक अनूठी सृष्टि रचता है। वैदिक काल में प्रचलित अध्वर्यु और सोमविक्रमी का संवाद, पुंश्चली–ब्रह्मचारी का संवाद, वैश्य–शूद्र संवाद जिनके कर्मकाण्ड की विधियों में अभिनीत होने के सुस्पष्ट प्रमाण मिलते हैं, ये सब लोक रंगमंच के ही रूप हैं। संस्कृत नाट्यशास्त्र में उपलब्ध उपरूपक लोक रंगमंच के ही एक रूप हैं। इन उपरूपकों में नृत्य–गीत की प्रधानता होती है। आख्यान या कथागायन तथा प्रेक्षकों को सीधे सम्बोधित करने की शैली का प्रयोग भी प्रायः इनमें होता है। भास के पंचरात्रम् तथा बालचरितम् इन दो नाटकों में आभीर जाति के लोकनृत्य हल्लीशक का उल्लेख किया है। इन्हीं के मध्यमव्यायोग में जंगल में यात्रा करते ब्राह्मण परिवार को राक्षस का मिलन और मँझलें को सौंपने पर शेष को छोड़ने का कथांश, कालिदास के ''विक्रमोर्वशीयम्'' में प्राकृत या अपभ्रंश के पद्यों के साथ चर्चरी आदि लोकनृत्य तथा राजशेखर के नाटकों के बहुत से संविधान लोकरंगमंच से प्रेरित प्रतीत होते हैं।

लोकरंगमंच का बेहतरीन प्रयोग गीतगोविन्द में देखा जा सकता है। यह विभिन्न प्रान्तों में लोकरंगमंचों का प्रेरक, स्रोत और परिपोषक रहा है। असम का अंकीया नाट, बिहार में उमापति के नाटक, दक्षिण में भागवत नाटक, यक्षगान, कथकली तथा कृष्णाट्टम्, बंगाल की यात्रा और हरिकीर्तन इन सबका प्रेरणास्रोत हैं।

वस्तुतः लोक रंगमंच की समृद्ध परम्परा भारतीय इतिहास का स्वर्णिम अध्याय है। बौद्ध साहित्य में इस रंगमंच को कला के नूतन अवतार में प्रकट किया गया है। 15वीं या 16वीं शताब्दी में पुराणों, ऐतिहासिक महाकाव्यों, मिथकों और खगोलीय नाम की आत्मकथाओं के रूप में इसका विकास हुआ। कर्मकाण्ड के अभिनव प्रयोगों का इस लोक रंगमंच के व्यापक प्रचार–प्रसार में अनतिरसाधारण योगदान है। यह कथात्मक रूप में सूत्रधार की उत्पत्ति और प्राचीन रागों की तरफ ध्यानाकर्षण करता है। सूत्रधार ने अपनी कला के अनुरूप कथा–वर्णन का अभिनय किया और इसे उच्च स्वरूप प्रदान किया। लोकरंगमंच की इस विशेषता के कारण ही मानव मूल्य, दार्शनिक सिद्धान्त तथा धार्मिक पंथ का व्यापक प्रसार हुआ।

भारतीय लोक रंगमंच को वास्तव में धार्मिक और धर्मनिरपेक्ष जैसी दो व्यापक श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है। धर्मनिरपेक्ष लोक रंगमंच मनोरंजन का विशिष्ट साधन है। धार्मिक लोक रंगमंच इतिहास, धर्म और मिथक के आसपास विकसित हुए हैं।

भारत के प्रत्येक राज्य में लोक रंगमंच के विशिष्ट रूप हैं। मुख्य रूप से उड़ीसा, बंगाल, बिहार, महाराष्ट्र, उत्तरप्रदेश, राजस्थान, पंजाब, गुजरात, कर्नाटक, तमिलनाडु आदि हैं। कुछ भारतीय नृत्यों ने लोक रंगमंच को ऊँचाई पर पहुँचाया। सम्पूर्ण लोक रंगमंच संस्कृत से अनुप्राणित रहा। भारत के कुछ प्रसिद्ध लोकरंगमंच है जिनमें यात्रा अथवा जात्रा, रामलीला, रासलीला, स्वांग, नौटंकी, दशावतार, करियाला, ख्याल, तमाशा, ओट्टन, थुलाल, तेरुक्कुटु तथा भामकलापम आदि है।

1. **यात्रा अथवा जात्रा** – पूर्वी भारत का धार्मिक लोकरंगमंच है। चैतन्य महाप्रभु का भक्ति आन्दोलन इसका बीज है। इसमें रुक्मिणी हरण के प्रसंग को नाटक के द्वारा प्रस्तुत किया जाता है। ओडिशा में यह अत्यन्त प्रचलित है।

2. **रामलीला** – इस लोक रंगमंच का प्रारम्भ तुलसीदास जी ने काशी में किया था। मुगल काल में यह प्रथम बार मंचित हुआ। दशहरा के दौरान इसको खेला जाता है। इसका विषय रामायण की कहानी है। रामलीला अथवा रामकथा के महाकाव्य आधारित प्रस्तुतीकरण का सबसे प्रथम उल्लेख महाभारत के खिलपर्व हरिवंशपुराण में प्राप्त होता है। हरिवंश पुराण में इस बात का समुल्लेख प्राप्त होता है कि प्रद्युम्न, साम्ब आदि यादवों ने अन्य नाटकों के साथ रामजन्म का भी अभिनय किया था। रामकथा पर आश्रित नाटकों की समृद्ध परम्परा भी रामलीला के प्रदर्शन का हेतु रही है। काशी और अयोध्या रामलीला के प्रमुख केन्द्र रहे हैं। काशी में तो जिन स्थानों पर रामलीला होती थी उनके नाम आज भी वही है।

3. **रासलीला** – श्रीकृष्ण के जीवन वृतान्त को नाटकीय माध्यम से इसमें प्रस्तुत किया जाता है। उत्तरप्रदेश तथा राजस्थान में इसका बहुत अधिक प्रचार है। इसका मुख्य उद्देश्य सांसारिक लोगों को भक्ति रस की उपलब्धि कराना है। रास का आयोजन प्रायः भक्तजनों द्वारा मन्दिरों में किया जाता है। राधा–कृष्ण की झाँकी का आयोजन तथा रास इसका प्रमुख तत्त्व है। वस्तुतः रास मुख्यतः नृत्य और संगीतात्मक नाट्य रूप है। कृष्ण जन्म से लेकर मथुरा प्रवास तक की लीलाएँ इनमें मुख्य रूप से अभिनीत की जाती है।

4. **स्वांग** – यह पंजाब, हरियाणा, ओडिशा, राजस्थान, उत्तरप्रदेश, उत्तराखण्ड और बंगाल के ग्रामीण इलाकों में अत्यन्त प्रसिद्ध है। भावनाओं की नर्मता, सवांद की तीव्रता और विशिष्ट परिधान इस रंगमंच की कुछ विशेषताएँ हैं। स्वांग की दो महत्त्वपूर्ण शैलियाँ रोहतक और हाथरस से है। रोहतक शैली में हरियाणवी (बंगरू) भाषा का प्रयोग होता है। और हाथरस शैली में ब्रज भाषा का प्रयोग होता है।

   लोकधुनों के मनोरम प्रयोग के साथ इसका प्रस्तुतीकरण दर्शकों को लालायित कर देता है। वस्तुतः स्वांग शब्द का अर्थ है – नकल करना, रूप भरना या भेष भरना। ''ढोला मारु'' हरियाणा की एक प्रसिद्ध लोककथा है जो इसमें सफलतापूर्वक प्रस्तुत की जाती है। इसके अलावा नल–दमयन्ती, राजामयसरी तथा गोपीचन्द आदि पौराणिक कथानक भी अत्यन्त प्रसिद्ध है। इसमें व्यक्ति विशेष की कल्पनाओं, मान्यताओं एवं भावनाओं की अनुकृति नहीं मिलती।

5. **नौटंकी** – यह उत्तर भारत का एक प्रसिद्ध पारम्परिक लोक रंगमंच है। ऐसा कहा जाता है कि इस शैली को रंगमंच के भगत रूप में विकसित किया गया था जो लगभग 400 वर्ष पुराना है, जबकि नौटंकी शब्द केवल 19वीं शताब्दी में आया है। ऐतिहासिक कथानकों को जनता के सामने प्रस्तुत करना भी इसका लक्ष्य है। अमरसिंह राठौड़, पन्नाधायी, पृथ्वीराज चौहान, रानी दुर्गावती तथा राणा सांगा आदि इसमें मुख्य हैं। वस्तुतः यह गेय नाटक है अतः संवाद गाकर बोले जाते हैं। संवादों को कई छन्दों में बाँधा जाता है। जिसमें बहरतवील, चौबोला, दोहा, लवनी, शैर, तुमरी, दादरा, कब्बाली, ख्याल, गजल आदि में सवांद रखे जाते हैं।

   पारसी रंगमंच से प्रभावित यह नौटंकी संवादों को प्रभावशाली विधि से प्रस्तुत करती है। मानक हिन्दी कोश में नौटंकी की परिभाषा इस प्रकार दी गई है – सामान्य जनों के बीच प्रस्तुत किया जाने वाला एक प्रकार का लोक नाट्य है जिसका कथानक शृंगारिक अथवा युद्धपरक होता है।

6. **दशावतार** – यह कोंकण व गोवा क्षेत्र का सबसे विकसित और प्रसिद्ध लोक रंगमंच है। प्रस्तोता पालन एवं सृजन के देवता भगवान् विष्णु के दस अवतारों को प्रस्तुत करते हैं।

7. **करियाला** – यह हिमाचल प्रदेश का सबसे लोकप्रिय लोकरंगमंच है। शिमला, सोलन तथा सिरमौर में इसका प्रदर्शन मनोरंजक नाट्य श्रृंखला में मेले और उत्सव के अवसरों पर किया जाता है।

8. **ख्याल** – राजस्थान के रंगमंच की यह विशेष विधा है। पुरुषों द्वारा किया जाने वाला यह लोक रंगमंच सामाजिक एवं धार्मिक सौहार्द्र को बढ़ावा देता है।

9. **तमाशा** – महाराष्ट्र का सबसे प्रथित लोक रंगमंच है। इसमें मुख्य भूमिका में प्रायः महिलाएँ होती है। इन्हें मुर्की के नाम से जाना जाता है। महाराष्ट्र में प्रचलित नृत्यों तथा लोककलाओं को नया आयाम देने का विशिष्ट कार्य इस लोकरंगमंच ने किया है।

10. **ओट्टन थुलाल** – केरल का लोकप्रिय लोकरंगमंच है। इसे 18वीं शताब्दी में कुचन नंबियार (मलयालम भाषा के प्रसिद्ध कवि) द्वारा आरम्भ किया गया था। मुखौटा लगा हुआ चेहरा इस रंगमंच की विशेषताएँ है।

11. **तेरुक्कुट्टु** – तमिलनाडु का लोकप्रिय रंगमंच है। इसका प्रदर्शन वर्षा की देवी मरिअम्मा को प्रसन्न करने के लिए किया जाता है। यह मनोरंजन, अनुष्ठान तथा सामाजिक निर्देश का एक सशक्त माध्यम है।

12. **भाम कलापम** – आन्ध्रप्रदेश का प्रसिद्ध लोकरंगमंच है। 16वीं शताब्दी में सिद्धेन्द्र योगी द्वारा इसका प्रयोग किया गया था।

13. **अंकिया नाट** – असम के वैष्णव संत शंकर देव ने ब्रज मण्डल में होने वाली रासलीलाओं की प्रस्तुति को देखकर अपने राज्य में एक अंक को आधार मानकर अंकिया नाट लिखे। इनमें श्रीकृष्ण की लीलाओं का चित्रण था। अंकिया नाटों की प्रमुख भाषा बंगला से प्रभावित व्रजबुलि है। यह हिन्दी बंगला तथा मैथिली के प्रारम्भ की भाषा है। संस्कृत नाटकों से अनुप्राणित यह नाट रूपक के लक्षणों पर खरा उतरता है। इसमें भरतवाक्य की तरह सूत्रधार अन्तिम में **मुक्ति–मंगल** का गान करता है। आज की आसाम के ग्रामीण अंचल में ये नाट खेला जाता है।

14. **बिदेसिया** – भोजपुरी क्षेत्र का प्रसिद्ध लोक रंगमंच है। वस्तुतः बिहार में अत्यन्त प्रसिद्ध है। इसके प्रणेता भिखारी ठाकुर थे। पश्चिमी बिहार के ग्रामांचल की समस्या को इसमें चित्रित किया गया है। बिदेसिया नाम के पीछे जिसका एक कारण है कि इसमें विरहिणी युवती की दुःख गाथा है जिनका पति बाहर गया हुआ है। फिर भी वहीं बसकर वह किसी अन्य युवती से प्रेम करते लग जाता है। विरहा पीड़िता नायिका अपनी विरह–व्यथा–विरह में प्रकट करती थी।

गवनां कराइ सैंया घरे बइठवले से,
अपने वो भइले परदेस रे बिदेसिया।
चढली जवनिया बैरन भईली हमरी से
के मोरा हरिहैं कलेस रे बिदेसिया।।

हिन्दी के कई नाटक इस शैली पर आधारित है।

1. **ख्याल** – 18वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में इसका आरम्भ हुआ। यह संगीत प्रधान लोकनाट्य है। लावनी नाम से भी इसको जाना जाता है। लोक प्रचलित शब्द

और तीखापन तथा व्यंग्यात्मकता इस भाषा की विशेषता है। संगीत और नृत्य इसका मूल है। इसके अनेक भेद हैं, जैसे – मेवाड़ी ख्याल, जैपुरी ख्याल, कुचामणी ख्याल, शेखावाटी ख्याल तथा हाथरसी ख्याल आदि।

2. **माच** – मालवा का लोकप्रिय लोक रंगमंच माच है। उज्जैन इसका प्रमुख केन्द्र रहा है। संस्कृत के मंच शब्द का यह अपभ्रंश है।

वस्तुतः लोकरंगमंच जनपदीय रंगमंच, पारम्परिक रंगमंच तथा आनुष्ठानिक आर्ट भी कहा जाता है। इनमें लोककथा, गीत, नृत्य, मिथक तथा यथार्थ जीवन प्रसंग उल्लिखित रहता है। यह रामायण तथा महाभारत से होता हुआ वल्लभाचार्य की रासलीला, तुलसीदास की रामलीला तथा औरंगजेब के दरबार में होने वाले स्वांग से विकसित हुआ। लोक रंगमंच की प्रमुख विशेषताएँ निम्न हैं –

1) लोकमानस को प्रतिबिम्बित करते हैं।
2) वैयक्तिकता के स्थान पर सामूहिक अभिव्यक्ति विद्यमान रहती है।
3) शीघ्र सम्प्रेषणीयता इसका विशिष्ट तत्त्व है।
4) अभिनय पर विशेष बल दिया जाता है।
5) गीतात्मक, लयात्मक तथा तुकान्तक संवाद इसके प्रमुख तत्त्व हैं।
6) हास्य, उपदेश तथा प्रेम का निरूपण इसमें मुख्य हैं।

इस प्रकार लोकरंगमंच भारतीय रंगमंच का उत्कृष्ट स्वरूप हैं

14.2.4 व्यापारिक रंगमंच

व्यापारिक रंगमंच का अपर नाम पारसी रंगमंच है। इसके अधिकांश मालिक पारसी होने के कारण इसे भारतीय पारसी रंगमंच कहने लगे। इस रंगमंच का प्रारम्भ 1874 में आसाम के गोपीचन्द्र नाटक से माना जाता है। भारत के तीसरे रंगमंच के रूप में इसे जाना जाता है। इसकी संस्थापना सम्भवतः प्लासी के युद्ध के पश्चात् मानी जाती है।

पारसी लोग अंग्रेजी से प्रभावित थे, इसीलिए इनकी कम्पनियों के अधिकांश नाम भी अंग्रेजी में ही लिखे गए, जैसे – अलफ्रेड थियेटर, कोरेन्थियन, न्यू थियेट्रिकल कम्पनी इत्यादि। सर्वप्रथम राजा गोपीचन्द्र नाटक आपेरा के रूप में खेला गया, जिसे दर्शकों ने बेहद पसन्द किया। यह व्यापारिक रंगमंच होने के साथ–साथ व्यावहारिक रंगमंच भी था। विज्ञापन अथवा इश्तहार के जरिए इस रंगमंच ने अत्यधिक ख्याति अर्जित कर ली थी।

वस्तुतः उन्नीसवीं शताब्दीं के उत्तरार्द्ध में एक तरफ रामलीला, रासलीला, नौटंकी आदि लोकधर्मी नाट्यपरम्परा तो विराजमान थी ही, दूसरी तरफ बड़े–बड़े शहरों में विदेशी नाटकों का मंच भी शिक्षितों का ध्यान आकृष्ट कर रहा था। रहस, दरयाए, तअश्शुक, अफसाना ए–इश्क आदि नाटकों का मंचन हुआ। हिन्दी में जानकी मंगल आदि नाटकों की शुरुआत हुई। इस तरह हिन्दी रंगमंच की दो धाराएँ सामने आई जिनमें व्यापारिक रंगमंच तथा अव्यापारिक रंगमंच दोनों शामिल हैं। व्यापारिक अथवा व्यावसायिक रंगमंच पारसी कम्पनियों के मालिक चलाते थे। ये मालिक जैसे व्यवसाय में दक्ष हुआ करते थे, वैसे ही निर्देशन एवं अभिनय में भी कुशल थे। हर कम्पनी अथवा मण्डली के पास एक नाटककार होता था, उसको मुंशी कहा जाता था। हिन्दी

नाटककारों के लिए पंडित जी कहा जाता था। स्त्री पात्रों को प्रवेश देने का श्रेय पारसी रंगमंच को ही है। अभिनय में रोचकता एवं स्वाभाविकता लाने के लिए दी इन स्त्री पात्रों को मंच पर लाया गया। मनोरंजन की दृष्टि से व्यापारिक रंगमंच उत्कृष्ट था। उर्दू भाषा के प्रयोग से प्रारम्भ हुए इस रंगमंच पर हिन्दी भाषा के प्रयोग का श्रेय राधेश्याम कथावाचक और पं.नारायणप्रसाद 'बेताब' को है।

गीत और संगीत इस रंगमंच का विशेष आकर्षण रहा है जिनमें गीत की प्रधानता, नृत्य की अल्पता और बाध्य का सर्वथा अभाव, तुकबन्दी की प्रधानता, अप्सरा नृत्य, वेश्या नृत्य, गीतों में अश्लीलता की प्रचुरता मुख्य रूप से थी। रूप विन्यास, वस्त्रालंकरण, दृश्य विधान, संगीत तथा नृत्य नियोजन इत्यादि इस रंगमंच की विशेषता थी। स्वगत कथन, नेपथ्य संयोजन, आकाशभाषित और समूहगान का प्रयोग–बाहुल्य भी इसकी अपर विशेषता थी। इस रंगमंच पर प्रदर्शित होने वाले नाटकों का उद्घाटन अथवा प्रारम्भ रात के दस बजे शुरू होता और सुबह के तीन या चार बजे समाप्त होता। रात के इस माहौल में दर्शक एकप्राण होकर इन नाटकों का आनन्द लेते थे।

वस्तुतः व्यापारिक रंगमंच ने रंगमंच की दुनिया में कदम रखते ही क्रान्ति का संचार किया तथा भारत के रंगमंच को विस्तृत रूप प्रदान किया। धीरे–धीरे यह रंगमंच पतनोन्मुख होकर ह्रास को पहुँच गया जिनमें कुछ कारण उल्लिखित किए जा रहे हैं – दुष्प्रबन्ध, वेतन वितरण की अनियमितता, रेड़ियों और टेलीविज का प्रादुर्भाव, अव्यावसायिक मंच का अभ्युदय, व्यावसायिक मंच की उपेक्षा तथा मुख्य भूमिकाओं की दोहरी तैयारी के कारण कलाकारों का बाहुल्य आदि। इस प्रकार व्यापारिक रंगमंच ने भारतीय रंगमंच के विस्तृत फलक को बढ़ाने में अपना अमूल्य योगदान दिया।

14.2.5 संस्कृत रंगमंच की वैश्विकता

संस्कृत रंगमंच विश्वव्यापी रंगमंच है। दुनिया के अनेक देशों में इस रंगमंच का गहरा प्रभाव देखने को मिलता है। बाली, जावा, भूटान, नेपाल, इण्डोनेशिया, सिंगापुर तथा पश्चिमी यूरोप में बहुतायत में इसके प्रमाण दृष्टिगोचर होते हैं। संस्कृत रंगमंच की सर्वांगीण व्यवस्था, रमणीय सज्जा तथा वैज्ञानिक निर्मिति अतुलनीय है। सम्पूर्ण संसार में इसका कोई सानी नहीं है। संस्कृत रंगमंच की विविधता उत्कृष्ट नाट्यतत्त्व, सुव्यवस्थित अभिनय कौशल परिपूर्ण उपकरण तथा साधन आदि से सम्पन्नता ही इसके विदेशों में व्यापक रूप से फैलने में हेतु में प्रबल कारण है। कम्बोडिया की राजकीय रंगशाला **राम राम** के नाम से पुकारी जाती थी। रचना के सन्दर्भ में यह हमारी रंगभूमि के सदृश ही थी। इसके एक तरफ बिल्कुल खुला रहता था। रंगपीठ के पास ही पात्रों की वेशभूषा के परिवर्तन तथा सजावट के लिए नेपथ्यगृह की व्यवस्था होती थी। रामायण के अभिनय के अवसर पर ही समग्र पात्र पुरुष होते थे, नही ंतो स्त्रियाँ ही नटों की भूमिका में अवतीर्ण होती थी। रंगशाला का एक विशेष प्रबन्धक होता था जो हमारे नाट्याचार्य के समान होता था। नटियों को सजाने, सिखलाने तथा तैयार करने का भार राजमहल की किसी विशिष्ट शिक्षित महिला के ऊपर होता था। जावा के नाटक छाया नाटक ही होते थे जिन्हें नयंग कहते हैं। इसके सात विभिन्न प्रकारों का वर्णन तथा विभाजन पाया जाता है। भारतवर्ष में **पुत्तलिका नृत्य** के समान ही इनका भी प्रदर्शन किया जाता था। इन नाटकों के विषय तथा प्रकार के ही लिए जाना भारतीय साहित्य का ऋणी नहीं है, प्रत्युत इनके अभिनय, प्रदर्शन तथा प्रयोग के लिए भी अत्यन्त ऋणी है।

पश्चिम में ग्रीस में रंगमंच की परम्परा का उद्भव एवं विकास हुआ। रोमन नाटकों का अंकों में विभाजन भारतीय संस्कृत नाट्य का प्रतिकल्पित रूप है। अरस्तू, होरेस, गोइथे, कोलेरिज, हैजलिट, इल्सन, मैथ्यू अर्नाल्ड, जॉर्ज बर्नार्ड शॉ, ओटो ब्राम, डेविड बेलास्को, मैक्स रीनहार्ट, स्तानिस्लाब्स्की, जैक्स कोव्यू, तैरोफ एडवर्ड गोर्डन क्रेग, मेयरहोल्ड तथा रिचर्ड शेख्नर आदि ने अपने ग्रन्थों के माध्यम से संस्कृत रंगमंच के प्रारूप को अभिव्यक्त एवं सुव्यवस्थित किया।

कथानक, चरित्रचित्रण, पदरचना, विचारतत्त्व, दृश्यविधान तथा गीत इन सभी तत्त्वों को अरस्तू ने संस्कृत रंगमंच से ही ग्रहण किया है। जर्मन भाषा के महान् कवि तथा नाटककार गोइथे ने रंगमंच के कुछ नियम आचार्य भरत के नाट्यशास्त्र के आलोक में ही बनाये। आस्ट्रिया के मैक्स रीबहार्ट ने रंगमंच पर नवीन यान्त्रिक साधनों और पद्धतियों का उपयोग आरम्भ किया। नाट्यशास्त्र के स्थापत्य में भी इन्होंने अनेक परिवर्तन किये। अभिव्यंजनावाद तथा तथ्यात्मकता इन दोनों का मिश्रण इन्होंने संस्कृत रंगमंच के अनुसार किया। ''मास्को आर्ट थियेटर'' के संस्थापक स्तानिस्लाब्स्की ने भरतमुनि के नाट्यशास्त्र के अनुसार ही थियेटर की स्थापना की। इनके द्वारा प्रतिपादित तथा व्यवहृत रंगमंचीय प्रविधियों को संक्षेप में सिस्टम कहा जाता है। ये रंगमंच को साधना और तप मानते हैं। उत्सर्ग तथा विसर्जन की अभिव्यक्ति इन दोनों में होती है।

यह मेथड अर्थात् सिस्टम कई अर्थों में भरतमुनि की अभिनय दृष्टि तथा अभिनय दिशा के बहुत अधिक निकट है। ये भी भरतमुनि की तरह अभिनेता की अन्तर्दृष्टि पर विशेष बल देते हैं। इनके अनुसार कोई भी नाट्यालेख सात स्तरों पर विरचित होता है।, जैसे – 1. बाह्य जगत् 2. नाट्य की सामाजिक अधिरचना 3. नाट्य की काव्यात्मकता 4. नाट्य की सौन्दर्यमूलकता 5. नाटक के पात्रों का आभ्यन्तर जगत् 6. अभिनेता की भावभूमि 7. सम्प्रेषणीयता।

रूस के नाट्यनिर्माता तैरोफ ने रंगमंच को समन्वित रंगमंच (Synthetic Theatre) की संज्ञा दी है। नाट्यशास्त्र में आहार्य अभिनय के अन्तर्गत वर्णित पुस्त की विधियों को मेयरहोल्ड ने लकड़ी के बने ज्यामितीय आकारों का उपयोग किया। अभिनय पद्धति में उन्होंने प्रतीकात्मकता का निर्वाह किया। इन्होंने ''बायो मेकेनिक्स'' और बायो जयनामिक्स को विकसित किया। इन्होंने अभिनेता के प्रशिक्षण की विशेष प्रविधि का भी अन्वेषण किया जिसे **बायोडायनामिक्स** कहा गया जो नाट्यशास्त्र के **आंगिक अभिनय** की अवधारणाओं के सन्निकट है। रूस में रंगशाला स्थापित करने वाले नाट्यनिर्देशक बख्तांगोफ ने **फंतासीमय यथार्थवाद** (फैंटास्टिक रियलिज्म) की अवधारणा को जन्म दिया। यह अवधारणा नाट्यशास्त्र में **क्रीडनीयक** नाम से अभिहित की गई है। इसमें नाटक की आत्मा का साक्षात्कार रंगमंच की विभिन्न शैलियों, प्रविधियों और उपादानों के समन्वय से प्रस्तुत होता है। जे.ली.प्रीस्टले अंग्रेजी के नाटककार के रूप में ख्यात है। वे कहते हैं एक नाटककार रंगमंच के लिए लिखता है। जो व्यक्ति पढ़ने के लिए नाटक लिखता है, खेले जाने के लिए नहीं वह नाटककार नहीं है। ये सभी प्रेरणाएँ नाट्यशास्त्र से प्रेरित हैं। बतौर लेखक के अधिकांश नाटकों में भारतीय पारम्परिक नाट्य की सूचना प्राप्त होती है। **सम्पूर्ण रंगमंच** (Total Theatre) की परिकल्पना भारतीय नाट्यशास्त्र से बहुत अधिक साम्य रखती हैं। इन्होंने अपने नाटकों में गीत, कथागायन, कथाकथन, नृत्य, संगीत आदि विभिन्न तत्त्वों का सम्मिश्रण किया। त्रासदी (Tradegy) एवं कॉमेडी (Comedy) के भेद को भी उन्होंने आत्यन्तिक रूप से स्वीकार न करते हुए उसमें सम्मिश्रण तथा

परस्पर विपर्यास उत्पन्न किया। इस प्रकार अनेक रूप में संस्कृत रंगमंच का गहरा प्रभाव इनके नाटकों में देखने को मिलता है। ग्रोताब्स्की ने दरिद्र रंगमंच (Poor Theature) की अवधारणा प्रस्तुत की। इनके इन भगीरथ प्रयासों में भारतीय रंगमंच की परम्परा का प्रभाव परिलक्षित हुआ है। इन्होंने अपनी नाट्यप्रक्रिया में मनो–दैहिक अभ्यास पर बल दिया और इस अभ्यास के लिए उन्होंने योग की अवधारणाओं को आधार बनाया। इस प्रक्रिया में इनके ऊपर कथकली का भी प्रभाव पड़ा। इनकी दृष्टि में रंगमंच प्रयोग याज्ञिक प्रक्रिया के समान है। जिसमें अभिनेता अपने आप का होम करता है। इसमें प्रयोक्ता और प्रेक्षक के बीच का सम्बन्ध पुरोहित तथा यजमान के बीच का सम्बन्ध बन जाता है। रिचर्ड शेखर ने रामलीला तथा नाट्यशास्त्र के परिप्रेक्ष्य में ही अपने रंगमंचीय प्रयोगों को पूरा किया। इनके रंगमंच का नाम (Environmental Theature) है। इसका मूल यात्रा, कथकलि तथा रामलीला है। रसास्वादन की प्रक्रिया भी संस्कृत रंगमंच से प्रभावित है। वस्तुतः शेखर कर्मकाण्ड से नाट्य तथा नाट्य से कर्मकाण्ड का सम्बन्ध स्थापित करते हैं।

वह सम्पूर्ण विवेचन संस्कृत रंगमंच के तेरह तत्त्वों का सार है, जो नाट्यशास्त्र में कहे गए हैं। लोकधर्मी तथा नाट्यधर्मी की अवधारणा को स्तानिस्लाब्स्की भौतिक तथा आध्यात्मिक रूप में स्वीकार करते हैं। दैवी सिद्धि के सिद्धानत को अंगीकार करते हुए स्तानिस्लाब्स्की (Super-consciousness) शब्द का प्रयोग करते हैं। सच पूछा जाय तो इनके मत में अभिनय कर्म एक साधना है और अभिनेता इसमें योगी हैं।

ब्रेख्त का रंगमंच ज्ञान संस्कृत रंगमंच से ही प्रभावित है। इसमें अभिनेता द्वारा अपनी भूमिका से अलग होकर दर्शक को सीधे सम्बोधित करता है। संस्कृत रंगमंच में जो कार्य सूत्रधार का है तद्वत् ब्रेख्त के रंगमंच में भी है। सूत्रधार भी सीधे दर्शकों से संवाद रखता है। इसे ब्रेख्त पार्थक्य प्रभाव (Inalation effort) कहा है। ब्रेख्त प्रेक्षक के द्वारा मंच पर प्रस्तुत घटनाओं और चरित्रों से तादात्म्य का भी विरोधी है। वे कहते हैं – चित्रकार चित्र बनाता है, दर्शक उसे देखता है। दोनों का अस्तित्व चित्र से अलग है। आचार्य शंकुक ने भी इसे चित्रतुरगन्याय से बताया है। इस प्रकार यह बात तो निःसन्देह सत्य है कि संस्कृत रंगमंच की वैश्विकता विविधता से परिपूर्ण रही है।

संस्कृत के अधिकांश नाटकों का हिन्दी एवं हिन्दीतर भाषाओं के रंगमंच पर अभिनीत होना संस्कृत रंगमंच की वैश्विकता का प्रबल प्रमाण है। पुराख्यानों, चरित्रों, नृत्यों, मुखौटों और वेश–विन्यास की दृष्टि से बाली का पारम्परिक रंगमंच संस्कृत रंगमंच से सम्पृक्त है। इस रंगमंच में व्यावसायिकता का नामो–निशान नहीं है। आशु संवाद रचना तथा हिन्दू पुराणों की कथाएँ उसकी संरचना में महत्त्वपूर्ण स्थान रखते हैं। कम्बोडिया में छाया नामक अत्यन्त लोकप्रिय है। रामायण और महाभारत की कथा पर आधारित ये नाटक वहाँ के रंगमंच का प्रमुख हिस्सा है। बहुत लम्बे समय से चर्म पुतलियों या कठपुतलियों के माध्यम से रामकथा से सम्बद्ध का प्रभावशाली प्रदर्शन होता है। **नंग स्वेक** नामक यह छाया नाटक विश्वभर में अपनी धाक जमा चुका है।

इण्डोनेशिया का बायांग कुलित और बायांग पूर्वा छाया नाटक अपनी सांस्कृतिक थाती के लिए जाना जाता है। इनमें चर्म– पुतलियाँ अभिनीत पात्र की जीवित छाया की प्रतीक होती है। इनका संचालन दलांग करता है। कदली वृक्ष के सामने बैठा हुआ वह एक पौराणिक जगत् की अद्भुत सृष्टि करता है। वह पुरोहित और कलाकार दोनों होता है जो संगीत और नृत्य दोनों में पारंगत होता है। वह पात्रों की ओर से संवाद भी बोलता है और आवश्यकता पड़ने पर धार्मिक संदेश भी देता है। विदूषक जैसा पात्र

भी इसमें होता है। नृत्य और नाट्य का मूल नियम रामायण और महाभारत के प्रसंग होते हैं।

थाइलैण्ड भी अपने प्राचीन नाट्य रूपों के लिए मशहूर रहा है। थाइ रंगमंच का सबसे पुराना रूप **लकोन जात्री** माना जाता है। भारतीय नृत्य और बौद्ध कथा प्रसंगों से इसका उद्भव माना जाता है।

श्रीलंका का रंगमंच भी भारतीय रंगमंच से प्रभावित है। बौद्ध परम्परा वहाँ की प्रसिद्ध परम्परा है जिसने अनेक अनुष्ठानों को जन्म दिया। सोकरी, कोलम तथा नादगम आदि नाट्य प्रधान आख्यान यहाँ प्रसिद्ध है। कोलम में मुखौंटो का प्रयोग होता है। तिब्बत के मठों में भी रंगमंच की परम्परा रही है। पर्वतों की उपत्मकाओं में रंगमण्डप बनाकर, नृत्य गीत तथा कल्पना से ओतप्रोत नाट्य का मंचन किया जाता था जो संस्कृत रंगमंच से सर्वथा प्रेरित था।

चीनी रंगमंच भी इसी परम्परा में उल्लेखनीय नाम हैं यह रंगमंच मन्दिरों और मठों से सम्बद्ध रहा है। इन रंगमंचों में नाटक दुपहर में शुरू होते थे और हजारों की संख्या में देखे जाते थे। चीनी रंगमंच की अभिनय पद्धति के तीन महत्त्वपूर्ण अंग है। नृत्य, संगीत और गति। इनके **चाउ** नामक पात्र पर विदूषक का पूर्णतः प्रभाव है।

जापान की नोह और फातूकी रंगपरम्परा आज विश्व की प्रतिष्ठित रंग कलाओं में गिनी जाती है। वस्तुतः **नोह** शब्द का अर्थ शिल्प, निपुणता तथा क्षमता आदि होता है। बौद्ध का कथानक किसी पूर्व घटना पर आश्रित होता है। इसमें केवल नाटकीय स्थिति को ही मंच पर प्रस्तुत किया जाता है। पूर्वरंग की भाँति इसमें कई अनुष्ठान विहित होते हैं। इसमें आमुख और मांगल्य के लिए **ओकिना** नृत्य किया जाता है। वेशभूषा प्रधान इस रंगमंच की सबसे वही विशेषता यह है कि इसमें सभी भूमिकाएँ प्रायः पुरुषों के द्वारा ही खेली जाती है। इसी प्रसंग में काबुकी रंगमंच भी ठोस आधार कहा जा सकता है। इस रंगमंच में नृत्य एवं वेशभूषा का कार्य अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। यह काफी लम्बा–चौड़ा होता है। मंत्र और प्रेक्षागृह को जोड़ने वाला यह रंगमंच कम से कम कुछ सीमा तक अदृश्य जगत् का भी निरूपण करता है।

इस प्रकार रंगमंच को यथार्थ के मोह में अनाटकीय होने से संस्कृत रंगमंच ही बचा सकता है।

बोध प्रश्न/अभ्यास प्रश्न

1. आचार्य भरतमुनि के अनुसार रंगमंच कितने प्रकार का होता है –

   (क) 4 (स) 3 (ग) 2 (घ) 6

2. रिक्त स्थानों की पूर्ति करें –

   1) कुटियाट्टम .... राज्य का प्रसिद्ध नाटक है।

   2) खुला रंगमंच .... भी कहलाता है।

   3) मध्यमव्यायोग .... की रचना है।

   4) ओट्टम थुलाल .... राज्य का प्रसिद्ध लोकरंगमंच है।

3. मिलान करें –

   क. भामकलापम – 1. बिहार

ख. तेरुक्कुट्टु – 2. आन्ध्रप्रदेश

ग. बिदेसिया – 3. मालवा

घ. माच – तमिलनाडु

4. कम्बोडिया की राजकीय रंगशाला का नाम है –

(क) राम राम (ख) राम–कृष्ण (ग) राम–रावण (घ) राम–सीता

अभ्यास–प्रश्न

1. संस्कृत रंगमंच की वैविकता के विषय में विस्तार से वर्णन करें।
2. व्यापारिक रंगमंच से आप क्या समझते हैं।

14.3 सारांश

प्रिय छात्रों! इस इकाई में आपने रंगमंच की विस्तृत व्याख्या के साथ–साथ आचार्य भरत द्वारा निर्दिष्ट संस्कृत रंगमंच के वैधानिक स्वरूप तथा उसके विविध प्रकारों के विषय में जाना। इसके अन्तर्गत रंगमंच के विविध प्रकारों की भी आपने विस्तार के साथ जाना। मन्दिरों के संस्कृत रंगमंच के अन्तर्गत केरल, तमिलनाडु, काशी आदि नगरों के मन्दिरों में होने वाले संस्कृत नाट्य की विशेषता के सन्दर्भ में मालतीमाधव एवं अनर्घराघव जैसे महनीय नाटकों के विषय में आपने विस्तार से अध्ययन किया। यात्रा–महोत्सव एवं राजा के विजयोत्सव पर होने वाले ये संस्कृत नाटक मन्दिरों के रंगमंच पर विशेष प्रभाव डालते हैं। कुडियाट्टम जैसे प्रख्यात केरलीय नाट्य के विषय में भी आपने जाना। इसी क्रम में खुला रंगमंच अर्थात् मुक्ताकाशी रंगमंच की विशेषताओं तथा इसके प्रादुर्भाव के बारे में भी अध्ययन किया। यात्रा, रामलीला तथा रासलीला आदि खुले रंगमंच की ही देन है। महाकवि भास के पंचरात्र तथा बालचरित, कालिदास का विक्रमोर्वशीय एवं राजशेखर का बालरामायण नाटक लोकरंगमंच के जनक हैं। लोक रंगमंच का आविर्भाव 15वीं शताब्दी के आस–पास हुआ। यही लोक रंगमंच भारत के प्रत्येक राज्य में विस्तृत रूप से फैला हुआ है। इस विषय को आपने सोदाहरण जाना। तदनु यात्रा, रामलीला, रासलीला, नौटंकी आदि लोक रंगमंच की विशिष्टताओं के विषय में आपने अध्ययन किया।

व्यापारिक रंगमंच अर्थात् पारसी रंगमंच के इतिहास, भारत में इनके वर्चस्व तथा इनकी शैली के विषय में आपने विस्तृत अध्ययन किया। संस्कृत रंगमंच की विशिष्टता विविधता, कलात्मकता तथा मनोहरता के कारण वैश्विक स्तर पर इसके व्यापक प्रभाव को आपने जाना। दुनिया के प्रत्येक देश में संस्कृत रंगमंच का प्रभाव स्थानीय रंगमंच पर गहराई से रहा। कम्बोडिया, बाली, श्रीलंका, जावा, भूटान, नेपाल, चीन आदि देशों में इसका पूर्ण प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। इस सम्पूर्ण विषय को आपने विस्तार के साथ जाना।

14.4 शब्दावली

1. प्रेक्षागृह – रंगशाला अथवा रंगमंच।
2. त्र्यस्र – त्रिकोण।
3. यक्षगान – कर्नाटक की लोक नाट्य शैली।

4. मत्तविलास – प्रसिद्ध प्रहसन।
5. सुचरित – अनर्घराघव नामक नाटक का सूत्रधार।
6. कर्णसुन्दरी – महाकवि बिल्हण द्वारा विरचित नाटिका।
7. हल्लीशक – आभीर जाति का लोक नृत्य।
8. दशावतार – गोवा क्षेत्र का प्रसिद्ध लोक रंगमंच।
9. लकोन जायी – थाई संस्कृति का लोक रंगमंच।

14.5 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. अभिनव भारती – आचार्य विश्वेश्वर, हिन्दी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, 1960
2. नाट्यशास्त्र – बलदेव उपाध्याय तथा बटुकनाथ शर्मा, चौखम्बा विद्या भवन, 1929
3. नाटक के रंगमंचीय प्रतिमान – त्रिपाठी वशिष्ठ, जगत राम एण्ड संस, दिल्ली, 1991
4. रंगमंच और नाटक की भूमिका – लक्ष्मीनारायण लाल, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, 1965
5. भारतीय तथा पाश्चात्य रंगमंच, सीताराम चतुर्वेदी, हिन्दी समिति, लखनऊ, 1964
6. रंगकर्म – वीरेन्द्र नारायण, आलेख प्रकाशन, दिल्ली, 1978
7. हिन्दी रंगमंच का इतिहास (पहला भाग) – अ. चन्दूलाल दुबे, जवाहर पुस्तकालय, मथुरा, 1974

14.6 बोध/अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. ख–3
2. (i) केरल (ii) मुक्ताकाश (iii) भास (iv) केरल
3. क–2

   ख–4

   ग–1

   घ–3
4. (क)

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

इकाई 15 आधुनिक युग में संस्कृत रंगमंच

इकाई की रूपरेखा

15.0 उद्देश्य

15.1 प्रस्तावना

15.2 आधुनिक युग में संस्कृत रंगमंच

15.2.1 वाराणसी, उज्जयिनी, राजस्थान तथा दक्षिण के प्रदेशों में संस्कृत रंगमंच

15.2.2 संस्कृत रंगमंच के लिए समर्पित संस्थायें

15.2.3 सोपानम्–केरल

15.2.4 युवतरंग – राजस्थान

15.2.5 ज्ञानप्रवाह – वाराणसी

15.2.6 कालिदास संस्कृत अकादमी, उज्जैन

15.2.7 सागर विश्वविद्यालय – सागर

15.2.8 राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान (केन्द्रीय संस्कृत विश्वविद्यालय) – वसन्तोत्सव तथा कौमुदी महोत्सव

15.3 सारांश

15.4 शब्दावली

15.5 कुछ उपयोगी पुस्तकें

15.6 बोध/अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

15.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप :

- आधुनिक युग में संस्कृत रंगमंच के विषय में अध्ययन कर सकेंगे।
- भारत देश के विभिन्न नगरों में होने वाली रंगमंचीय गतिविधियों के बारे में जान सकेंगे।
- संस्कृत रंगकर्म के लिए समर्पित संस्थाओं के कार्यों के बारे में परिचित हो सकेंगे।
- केरल, राजस्थान, वाराणसी, उज्जैन, सागर तथा दिल्ली आदि की संस्कृत रंगसंस्थाओं के विषय में ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।
- संस्कृत रंगमंच की विशिष्टता एवं आधुनिक युग में इसकी प्रासंगिकता के विषय में अध्ययन कर सकेंगे।

15.1 प्रस्तावना

इससे पूर्व आपने रंगमंच के कतिपय अन्य प्रकारों के विषय में पढ़ा। इसके अन्तर्गत मन्दिरों का संस्कृत रंगमंच, खुला रंगमंच, लोक रंगमंच, व्यापारिक रंगमंच तथा संस्कृत रंगमंच की वैश्विकता के विषय में आपने विस्तृत रूप से जाना।

इस इकाई में आप आधुनिक युग में संस्कृत रंगमंच के विषय के अन्तर्गत वाराणसी, उज्जैन तथा केरल आदि के रंगमंच के विषय में अध्ययन करेंगे। वस्तुतः केरल,

वाराणसी तथा उज्जैन का संस्कृत रंगमंच अत्यधिक सक्रिय एवं लोक–लुभावन रहा है। यहाँ की समृद्ध परम्परा इस बात की साक्षी है कि कला एवं संस्कृति के विकास में संस्कृत रंगमंच की कितनी महती भूमिका है। ये तीनों नगर, कला एवं संस्कृति के लिए सम्पूर्ण विश्व में प्रसिद्ध है। यहाँ रंगमंच एक सहयोगी एवं संश्लिष्ट कला के रूप में अवतरित होता है जो नाट्य लेखन से प्रदर्शन अर्थात् प्रेक्षक तक एक संयुक्त रचनात्मक प्रक्रिया से गुजरकर जीवन्त अभिव्यक्ति माध्यम के रूप में साकार और सार्थक होता है। तदनु संस्कृत रंगकर्म के लिए समर्पित संस्थाओं के विषय में आप जानेंगे। इनमें केरल का सोपान, राजस्थान का युवतरंग, उत्तरप्रदेश का ज्ञानप्रवाह, मध्यप्रदेश का सागर विश्वविद्यालय एवं कालिदास अकादमी तथा दिल्ली का कौमुदी महोत्सव शामिल है। वस्तुतः ये रंगकर्म की संस्थाएँ समर्पित संस्थाएँ हैं। प्राचीन एवं आधुनिक संस्कृत नाटकों के मंचन से लेकर समाज में इन सभी नाटकों के सन्देश को प्रचारित करने का पुनीत कार्य ये सस्थाएँ कर रही हैं।

सागर विश्वविद्यालय के संस्कृत विभाग में तो इसके लिए पृथक् से नाट्य परिषद् की स्थापना की गई है जो इस बात का द्योतक है कि भारत के शिक्षा संस्थान भी इस रंगमंच के लिए समर्पित है। राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान (वर्तमान में केन्द्रीय संस्कृत विश्वविद्यालय) प्रतिवर्ष कौमुदी महोत्सव का आयोजन करता है जिसमें विभिन्न संस्कृत नाटक प्रस्तुत किए जाते हैं तथा जिनका दर्शक वर्ग भी बडे चाव से इन्हें देखता है।

इस प्रकार आधुनिक युग में संस्कृत रंगमंच के विस्तृत इतिहास एवं इसकी कार्यप्रणाली के विषय में आप जानेंगे।

15.2 आधुनिक युग में संस्कृत रंगमंच

रंगमंच के अन्तर्गत जीवों के सम्पूर्ण क्रिया कलापों के स्वरूपों, लेखक के मन में उठे हुए विचारों और कृति के कथ्य, पठन, मनन, निर्देशक, पात्र–चयन, पूर्वाभ्यास, मंच योजना, दर्शक, प्रदर्शन, उद्‌देश्य, प्रभाव एवं प्रतिक्रियाएँ सभी कुछ समाविष्ट है। इन सभी क्रियाओं के मिश्रित स्वरूप को जो नाम दिया जा सकता है वह है रंगमंच।

संस्कृत का रंगमंच साहित्यिक रंगमंच के साथ–साथ एक लोकमंच भी है। इसका आधार भारतीय पुराकथाएँ और महाकाव्यों से ली गई कथाएँ होती थी। दर्शक नाटकीय तत्त्वों में ज्यादा रुचि न दिखाकर प्रस्तुति पर ध्यान आकर्षित करते थे। संस्कृत रंगमंच सम्पूर्ण भारत में विद्यमान था। यह रंगमंच तो प्रयोग विज्ञान था। संस्कृत नाटकों के प्रायोगिक पक्ष पर तार्लेकर ने विशेष बल दिया है। इन्होंने संगीत, मंचीय विधान व अभिनय पद्धतियों की दृष्टि से नाट्यशास्त्र के प्रायोगिक पक्ष को अत्यधिक सम्बल प्रदान किया। संस्कृत रंगमंच कुडियाट्टम् का भी इन्होंने विशेष अध्ययन किया है।

वस्तुतः रंगमंच के लिए संस्कृत में नाट्य शब्द प्रयुक्त हुआ है। संस्कृत रंगमंच का तात्पर्य यह है कि किसी भी भाषा का नाटक इसमें अभिनीत हो सकता है, चाहे वह मूल संस्कृत नाटक हो, संस्कृत से अन्य भाषाओं में अनूदित हो अथवा चाहे अन्य भाषा का। हमें इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि संस्कृत रंगमंच केवल संस्कृत के नाटकों के लिए ही नहीं है तभी हम आधुनिक युग में इसकी प्रासंगिकता के विषय में जन–जन को बता सकेंगे।

आधुनिक युग में संस्कृत रंगमंच तो सत्रहवीं शताब्दी से ही अनवरत गतिमान् है। उस समय संस्कृत नाटक पारसी रंगमंच अथवा यथार्थवादी रंगमंच के साये में ही खेले जाते थे। संस्कृत के डायलॉग अर्थात् संवाद भी इसी रंगमंच के नियम के अनुसार बोले जाते थे। संस्कृत के नाटकों का प्रान्तीय भाषाओं में मंचन इस समय की प्रबल माँग थी। 1945 में प्रसिद्ध रंग निर्देशक बेताब ने अभिज्ञान शाकुन्तल का अनुवाद हिन्दी में प्रस्तुत किया तथा इस नाटक में प्रसिद्ध अभिनेता पृथ्वीराज कपूर ने दुष्यन्त का अभिनय कर सबको चकित कर दिया था। इसके बाद संस्कृत नाटकों का मंचन उर्दू, फारसी, मराठी, बंगला, हिन्दुस्तानी, कन्नड़ तथा मलयालम आदि भाषाओं में होने लगा। कलकत्ता की विद्यातोषिणी नामक संस्था ने विक्रमोर्वशीय, रत्नावली, मालविकाग्निमित्र तथा अभिज्ञान–शाकुन्तल नाटकों का मंचन बंगला में किया। संस्कृत जगत् में यह अभूतपूर्व घटना थी। इस क्रम में 1970 में संगीत नाटक अकादमी द्वारा आयोजित एक विचार गोष्ठी में संस्कृत के पारम्परिक विद्वान् एवं आधुनिक रंगमंच के शीर्षस्थ एवं प्रसिद्ध रंगकर्मियों के मध्य विमर्श हुआ कि संस्कृत नाटकों का मंचन भरतसम्मत रंगमंच पर आधुनिकता के साथ हो जिससे जनता संस्कृत नाटकों में निहित तत्त्व को समझ सके एवं उसका आनन्द ले सकें। इसके फलस्वरूप उज्जैन में कालिदास अकादमी के निर्देशन में अनेक संस्कृत नाटकों का संस्कृत रंगमंच पर मंचन हुआ। जिनमें हबीब तनवीर, कमलेशदत्त त्रिपाठी, रेवाप्रसाद द्विवेदी तथा प्रेमलता शर्मा आदि ने इन नाटकों को सफल बनाया। 1980 के आस–पास ये संस्कृत नाटक रंगमंचीय विधि–विधान से खेले जाने लगे। इसी सन्दर्भ में केरल रंगमंच के प्रसिद्ध निर्देशक कवालम नारायण पणिक्कर तथा कमलेशदत्त त्रिपाठी ने मिलकर कुडियाट्टम शैली में विक्रमोर्वशीय नाटक के चतुर्थ अंक का मंचन किया। यह प्रयोग जनता को पसन्द आया। तभी से संस्कृत रंगमंच का सिलसिला अनवरत चलता रहा। इससे पूर्व 1978 में पणिक्कर ने मध्यम–व्यायोग नामक नाटक को कालिदास अकादमी, उज्जैन में प्रस्तुत किया जो विश्व के इतिहास की घटना बन गया। इससे पूर्व 16 नवम्बर 1958 में संस्कृत के प्रसिद्ध विद्वान् वी.राघवन ने **संस्कृत रंग** नामक स्वयं की संस्था के बैनर तले अपनी शिष्या जानकी के साथ अनेक संस्कृत नाटकों का मंचन करवाया। संस्कृत रंगमंच के माध्यम से भारत की सांस्कृतिक विरासत को सामने लाना ही इस संस्था का मुख्य उद्देश्य था। 1958 में **मालविकाग्निमित्र** का प्रदर्शन अखिल भारतीय कालिदास समारोह में करना इस संस्था का महत्वपूर्ण योगदान रहा। **मत्तविलास–प्रहसन** को कुडियाट्टम शैली में प्रस्तुत कर नाट्यधर्मी परम्परा के आलोक में प्रस्तुत कर इस संस्था ने संस्कृत रंगमंच जगत् में धूम मचा दी। **आश्चर्य–चूड़ामणि** का मंचन भी वी. राघवन के निर्देशन में हुआ। भरतनाट्य तथा कल्याणी राग शैली में **अनारकली** का मंचन भी अभूतपूर्व घटना रही। वी.राघवन ने अपनी शिष्या जानकी के साथ अनेक संस्कृत नाटकों का मंचन कर संस्कृत रंगमंच को मुख्य धारा से जोड़ा। अभी वर्तमान में इनकी पुत्री नन्दिनी रमणी इस कार्य को सम्भाल रही है।

विजया मेहता ने भी संस्कृत रंगमंच को नूतन दिशा प्रदान की। अनेक संस्कृत नाटकों का ब्राह्मण सभा, मुम्बई के द्वारा मराठी में प्रस्तुतीकरण एवं मंचन कर प्रस्तुत किया। मुद्राराक्षस तथा अभिज्ञान शाकुन्तल का मराठी परम्परा के अनुसार भरत सम्मत नाट्य–मण्डप के विधि–विधान से प्रस्तुतीकरण इनकी विशेषता रही है।

हिन्दू एसोसिएशन, गोवा द्वारा भी मूल भाषा संस्कृत के साथ संस्कृत नाटकों का मंचन किया गया। इन नाटकों में चेतना दृष्टि तथा जीवन–बोध के साथ–साथ नाट्यसम्मत रंगमंच एवं अभिनय विधियों का प्रयोग मुख्य रहा।

मणिपुरी नाट्य के प्रख्यात निर्देशक रतन थियेम ने भी संस्कृत नाटकों का मंचन मणिपुरी शैली में किया। **ऊरुभंग** का प्रदर्शन तथा कर्णभार की प्रस्तुति इनके प्रमुख नाटकीय कार्यों में रही। ऋतुसंहार का मंचन भी मणिपुरी शैली में इनके द्वारा किया गया। छत्तीसगढ़ की **नाचा शैली** में हबीब तनवीर ने संस्कृत रंगमंच को नई दिशा प्रदान की। मृच्छकटिक का मिट्टी की गाड़ी के नाम से मंचन इन्होंने किया। उत्तररामचरित का भी संस्कृत रंगमंच पर मंचन सफल प्रयोग रहा। इसी क्रम में राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय में शान्ता गाँधी एवं रूपा गांगुली के निर्देशकत्व में अनेक संस्कृत नाटकों का मंचन हुआ। मध्यमव्यायोग, ऊरुभंग, मुद्राराक्षस, भगवदज्जुक का हिन्दी में मंचन दिया।

गोवर्धन पांचाल ने दूतकाव्य का निर्देशन एवं मंचन कर संस्कृत रंगमंच में अभूतपूर्व योगदान किया। सूर्यमोहन कुलश्रेष्ठ तथा कमल वशिष्ठ जैसे प्रतिष्ठित नाटककारों ने संस्कृत रंगमंच को नई ऊँचाई प्रदान की।

15.2.1 वाराणसी, उज्जयिनी, राजस्थान तथा दक्षिण के प्रदेशों में संस्कृत रंगमंच

भारत एक सांस्कृतिक देश है। यहाँ की मिट्टी में संस्कृति ने अपना डेरा डाल रखा है। इसके कोने–कोने से संस्कृति की सुगन्ध आती रहती है। इसके प्रत्येक राज्य में अलग–अलग संस्कृति के फलस्वरूप भी विविधता में अखण्डता का पाठ प्रत्येक भारतीय को स्मरण रहता है। इसी सांस्कृतिक विरासत का मुख्य अंग है – संस्कृत रंगमंच। संस्कृत रंगमंच के बीज हर जगह व्याप्त है। इसकी झलक अनेक लोक रंगमंचों पर देखी जाती है। वाराणसी, उज्जयिनी, केरल तथा तमिलनाडु आदि स्थानों में इसके भरपूर दर्शन होते हैं।

वाराणसी हमारी सांस्कृतिक विरासत है। गंगा के अविरल प्रवाह के आँचल में रचा बसा यह शहर अपने अन्तस् में ज्ञान–रश्मियों को रखता है। यहाँ अनेक नाट्यमण्डलियाँ सक्रिय रूप से नाटकों के मंचन के माध्यम से जनता का मनोरंजन कर रही है। जिनमें कवितावर्द्धिनी सभा, नेशनल थियेटर, जैन नाटक मण्डली, अग्रवाल बॉयज ड्रामैटिक क्लब, सेन्ट्रल हिन्दू कॉलेज, श्री नागरी नाट्यकला संगीत प्रवर्तक मण्डली, भारतेन्दु नाटक मण्डली आदि प्रमुख है। भारतेन्दु नाटक मण्डली में **सौभद्रहरण** नामक नाटक खेला गया जिसे गोविन्द शास्त्री दुगवेकर ने अनूदित किया था। अंग्रेज दर्शकों की सुविधा के लिए इस नाटक का अंग्रेजी अनुवाद किया गया।

वस्तुतः वाराणसी में प्रशिक्षित नाट्यकर्मी, कलाविलासी नागरिक, राजन्य और श्रेष्ठि वर्ग का धन ऐश्वर्य, बड़े–बड़े प्रासादों के प्रांगण और विशाल मन्दिरों के नाट्य–मण्डप नाट्य प्रयोक्ताओं को सहज–सुलभ थे जिससे वे निश्चिन्त होकर धीरललित नायकों और मुग्धा नायिकाओं को अनेकानेक भावों से भावित करते हुए शरीर, मन और बुद्धि से आरम्भ होने वाले अनुभवों के सहारे आहार्य, आंगिक, वाचिक और सात्त्विक अभिनयों द्वारा इस सृष्टि कर विदग्ध प्रेक्षकों को उसमें आकण्ठ निमज्जित कर देते थे।

पं. शीतलाप्रसाद त्रिपाठी ने रामचरितमानस के आधार पर जानकी मंगल नाटक लिखकर संस्कृत रंगमंच का सम्वर्द्धन किया। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने संस्कृत भाण लिखकर **विषस्य विषमौषधम्** संस्कृत रंगमंच जगत् में तहलका मचा दिया। **चौरपंचाशिका** के यतीन्द्रमोहन ठाकुर कृत बांगला संस्करण का हिन्दी अनुवाद **विद्यासुन्दर** नाम से कर इसका मंचन भी भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने किया। इसी प्रकार

''**प्रबोध–चन्द्रोदय**'' के तृतीय अंक का अनुवाद ''**पाखण्डविडम्बन**'' नाम से कर इसका भी रंगमंच पर अभिनय सम्पादित हुआ।

इस प्रकार उज्जैन भी हमारी सांस्कृतिक विरासत का अभिन्न अंग है। यहाँ कालिदास अकादमी ने संस्कृत रंगमंच की दिशा में अभूतपूर्व कार्य किया है। मालवा की माच शैली के साथ संस्कृत नाटकों के प्रयोग लोकविधा की प्रासंगिकता को बरकरार रखने में माहिर है। इस अकादमी ने संस्कृत रंगमंच की दिशा में प्रशंसनीय कार्य किया है। मध्यप्रदेश शासन के सहयोग से 1977 में स्थापित यह अकादमी शास्त्रीय रंगमंच, शास्त्रीय साहित्य एवं विभिन्न कला–परम्पराओं के गहन अध्ययन, शोध अनुशीलन, प्रकाशन एवं प्रयोग के सक्रिय केन्द्र के रूप में कार्यरत है। वोलोस (Volas) थियेटर समूह के द्वारा ग्रीक भाषा में अभिज्ञान–शाकुन्तल का मंचन 1986 में होना इसकी प्रसिद्धि का परिचायक है। वासेदा (Waseda) नाटक कम्पनी टोक्यो द्वारा जापानी भाषा में 20 नवम्बर, 1988 को कालिदास समारोह के अन्तर्गत अविमारक का प्रदर्शन भी इसकी प्रसिद्धि का प्रबल प्रमाण है। अब तक यह अकादमी अनेक संस्कृत नाटकों का मंचन करवा चुकी है।

राजस्थान में संस्कृत रंगमंच के लिए झालावाड़, उदयपुर, जयपुर, जोधपुर, नागौर तथा अलवर आदि प्रसिद्ध रहे। इनके अलावा राजस्थान विश्वविद्यालय का संस्कृत विभाग, केन्द्रीय संस्कृत विश्वविद्यालय, जयपुर परिसर तथा महाराज संस्कृत कॉलेज, जयपुर भी अग्रणी रहे। झालावाड़ की नाट्य संस्था की स्थापना सर भवानी सिंह ने की। जयपुर में जवाहर कला केन्द्र, रवीन्द्र रंगमंच, महाराज संस्कृत कॉलेज तथा केन्द्रीय संस्कृत विश्वविद्यालय, जयपुर परिसर में अनेक संस्कृत नाटकों का मंचन हुआ।

रवीन्द्र रंगमंच 1963 में स्थापित हुआ। राजधानी जयपुर में नृत्य, नाटक एवं संगीत कला के पोषण व संवर्द्धन हेतु अभूतपूर्व कार्य किया गया। अभिनय के क्षेत्र में रवीन्द्र मंच पर रंगकर्म से अभिनय की शुरुआत करने वाले कई रंगकर्मियों ने सिनेजगत एवं अन्य कला क्षेत्रों में राजस्थान एवं रवीन्द्र मंच का नाम राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय पर गौरवान्वित किया है।

जयपुर के महाराजा रामसिंह (द्वितीय) (1835–1880 ई.) ने अपने शासनकाल में एक नाटकघर बनवाया, जो **रामप्रकाश टाकीज** के नाम बहुत प्रसिद्ध हुआ। इस नाट्यशाला में अनेक संस्कृत नाटक खेले गए। इससे पूर्व भी आमेर के राजा मानसिंह (1589–1614) ने अपने दरबारी कवि मोहन से **दमन–मंजरी** नामक नाटक लिखवाया, जिसका मंचन आमेर के राजप्रासादों में किया गया। इसके बाद रामसिंह प्रथम (1667–1668) ने कवि **विश्वनाथ चित्रापरण रानाडे** से **शृंगार नाटिका** का प्रणयन करवाया तथा इसका मंचन भी हुआ। महाराजा सवाई जयसिंह (1700–1743) ने आमेर के जयगढ़ दुर्ग में रंगमंच का निर्माण करवाया था। 1831 में महाराज संस्कृत कॉलेज, जयपुर के छात्रों ने **उत्तर–रामचरित** का अभिनय किया। महाराजा मानसिंह ने इस अभिनय की भूरि–भूरि प्रशंसा की थी। इस नाटक में चन्द्रकेतु का अभिनय जयपुर के विख्यात संस्कृत मनीषी पण्डित मोतीलाल शास्त्री ने किया। इस नाटक के लिए पण्डित प्रभुनारायण शर्मा ''सहृदय'' को नाट्याचार्य की उपाधि से विभूषित किया गया।

जवाहर कला केन्द्र, जयपुर कला एवं संस्कृति का उच्च अध्ययन केन्द्र है। इसे राजस्थान सरकार ने राजस्थानी कला एवं शिल्प के संरक्षण के उद्देश्य से बनवाया था। चार्ल्स कोरिया द्वारा 1992 में संस्थापित यह केन्द्र संस्कृत रंगमंच का प्रमुख केन्द्र रहा है। इसमें ओपन थियेटर भी है। इसमें भी शताधिक संस्कृत नाटकों का मंचन हो

चुका है। डॉ. हरिराम आचार्य ने बीस से अधिक संस्कृत नाटकों का मंचन यहाँ किया तथा अनेक नाटकों का निर्देशन भी किया। राजस्थान संस्कृत अकादमी, जयपुर ने भी इस दिशा में सराहनीय कार्य किया। इस संस्था के अन्तर्गत सौ से अधिक संस्कृत नाटकों का मंचन अभी तक हो चुका है।

इस दिशा में केन्द्रीय संस्कृत विश्वविद्यालय (राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान) जयपुर परिसर, जयपुर का भी अप्रतिम योगदान है। प्रसिद्ध नाट्य निर्देशक प्रो. रमाकान्त पाण्डेय के नेतृत्व में पचास से अधिक संस्कृत नाटकों का मंचन विश्वविद्यालय के हिन्द केसरी सभागार में, रवीन्द्र मंच पर, जवाहर कला केन्द्र में तथा नई दिल्ली के कौमुदी महोत्सव में हो चुका है। जिनमें वेणीसंहार, अभिज्ञान शाकुन्तल, लटकमेलक, स्नुषा विजय इत्यादि शामिल है। प्रो. पाण्डेय की प्रेरणा से चालीस से अधिक संस्कृत छात्रों ने मिलकर युव तरंग संस्कृत नाट्य दल का गठन किया है, जिसका कार्यभार दीपक भारद्वाज देख रहे हैं। जिनमें संदीप शर्मा, फिरोज खान तथा राधावल्लभ शर्मा मुख्य हैं। इसके अतिरिक्त भी **पारम्परिक नाट्य संस्था, जयपुर** द्वारा भी संस्कृत नाटकों की प्रस्तुतियाँ की गई है। संस्कृत रंगमंच के लिए ये प्रस्तुतियाँ वास्तविक धरातल तैयार करती है। अनिल मारवाडी, सर्वेश व्यास जैसे उम्दा नाट्य रंगकर्मी इस रंगमंच के लिए सर्वथा समर्पित रहे हैं। सर्वेश व्यास ने संस्कृत नाटकों का निर्देशन भी किया है। संस्कृत से अनूदित पाँच से अधिक नाटकों में इन्होंने अभिनय भी किया है। इनके अभिनय की छाप न केवल राजस्थान में अपितु सम्पूर्ण भारत में पड़ रही है। अनिल मारवाड़ी ने वेणीसंहार का निर्देशन किया। इसमें मुख्य सहयोग दीपक भारद्वाज का रहा। रवीन्द्र मंच पर रंग बताशे समारोह में यह प्रस्तुति उल्लेखनीय रही। मारवाड़ी ने ''शकुन्तलोपाख्यान'' का बेले के रूप में भी सफल मंचन किया। यह कार्यक्रम मोदी विश्वविद्यालय, लक्ष्मणगढ़ (सीकर, राजस्थान) के स्थापना दिवस समारोह के अन्तर्गत हुआ।

टाउन हॉल, जोधपुर भी रंगमंच के लिए प्रसिद्ध है। यहाँ पर भी अनेक संस्कृत नाटकों का मंचन हो चुका है।

दक्षिण के प्रदेशों में कर्नाटक, तमिलनाडु, केरल तथा आन्ध्रप्रदेश शामिल है। इन राज्यों में संस्कृत रंगमंच पूर्णता से भरपूर रहा है। कर्नाटक की यक्षगान शैली का मुख्य स्रोत संस्कृत रंगमंच ही है। यह यक्षगान नाट्यशास्त्र तथा अभिनयदर्पण के सिद्धान्तों पर आधारित है।

इस यक्षगान के मूल रूप में कविता के गायन के तरीके, संगीत की धुन, लय और नृत्य तकनीक शामिल है। कर्नाटक में कर्नाटक संगीत के साथ–साथ संस्कृत रंगमंच भी खूब फला–फूला। उडुपी के मन्दिरों में, शृंगेरी शारदा पीठ में तथा बंगलूरु स्थित संस्थाओं में इस रंगमंच पर अनेक संस्कृत नाटक खेले गए। शृंगेरी स्थित केन्द्रीय संस्कृत विश्वविद्यालय के श्री राजीव गाँधी परिसर में भी प्रत्येक वर्ष संस्कृत नाटकों का मंचन होना संस्कृत रंगमंच की दिशा में सार्थक प्रयास है। यहाँ के छात्रों ने जी–तोड़ मेहनत कर रंगमंच के संसार को सुनहरा कर दिया है। अभिनय, संवाद अदायगी एवं मंच सज्जा में ये अग्रगण्य हैं। भगवदज्जुक जैसे संस्कृत नाटकों का मंचन इसी बात को द्योतित करता है कि संस्कृत रंगमंच के प्रति ये कितने समर्पित हैं। दिल्ली में होने वाले कौमुदी महोत्सव में भी इन्होंने अपने अभिनय की छाप छोड़ी है। यक्षगान शैली से मिश्रित इन संस्कृत नाटकों के प्रति दर्शक मुग्धभाव प्रदर्शित करते हैं।

केरल का संस्कृत रंगमंच अत्यन्त सक्रिय रहा है। कला के इस प्रदेश में सांस्कृतिक विचार–विनिमय बहुत वर्षों से होता आया है। कुडियाट्टम शैली पूर्णतः संस्कृत रंगमंच पर ही आश्रित है। कथकली अर्थात् कथा (कहानी) और कली (प्रदर्शन) भी 500 साल पुराना रूप है। यह मालाबार, कोचीन और त्रावणकोर के आस–पास प्रचलित नृत्य शैली है। **थिरयट्टम**, **पढ़यनि**, **तेय्यम** तथा **ओट्टंथुल्लल** केरल की प्रदर्शनकारी कलाएँ हैं। इन सभी का मूल संस्कृत रंगमंच ही है। अनेक संस्थाएँ इस रंगमंच के प्रति अगाध श्रद्धा एवं कर्म कौशल से कार्य रह रही है। **सोपानम्** नामक संस्था कवलम नारायण पणिक्कर के निर्देशन में काम कर रही है। भास एवं कालिदास के नाटकों को संस्कृत एवं मलयालम भाषा में प्रस्तुत करने का बेजोड़ कार्य यह संस्था कर रही है। इसके साथ–साथ केन्द्रीय संस्कृत विश्वविद्यालय, गुरुवायुर परिसर, गुरुवायुर का भी योगदान अविस्मरणीय है। यहाँ के छात्रों ने अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर अपने अभिनय की धूम मचाई है।

तमिलनाडु का लोकनृत्य तेरुक्कुत्तु अत्यन्त लोकप्रिय एवं संस्कृत रंगमंच से अनुप्राणित है। सड़क पर किये जाने वाला यह नाट्य द्रोपदी अम्मा के वार्षिक मन्दिर के उत्सव के समय किया जाता है। चेन्नई की **कलाक्षेत्र** नामक संस्था इस दिशा में सराहनीय कार्य रह रही है। 1936 में स्थापित यह संस्था अब तक 50 से अधिक संस्कृत नाटकों का मंचन कर चुकी है। ''भरतनाट्यम्'' नृत्य तो सम्पूर्ण रूप से नाट्यशास्त्र पर ही आधारित है। चेरी, अंगहार, हस्ताभिनय एवं वाचिकाभिनय से सम्पूर्ण रूप से सुसज्जित यह नृत्य संस्कृत रंगमंच का एक विस्तृत फलक है। **ई. कृष्णा अय्यर** ने इसे वैश्विक धरातल पर पहुँचाया। इसे अग्नि नृत्य भी कहा जाता है। चेन्नई अर्थात् मद्रास संस्कृत कॉलेज में भी संस्कृत नाटक की प्राचीन परम्परा रही है।

आन्ध्रप्रदेश में प्राचीन काल से रंगमंच के विविध रूप प्रचलित है जिनमें बुर्रकथा, हरिकथा, विधिनाटकम्, कोलाटम्, नाटक, कलापम तथा तोलुबोम्मलाट शामिल है। कूचिपुड़ी यहाँ का प्रसिद्ध नृत्य है। इस नृत्य के साथ संस्कृत रंगमंच के स्वरूप को मिलाकर अनेक नाटक प्रदर्शित किए गये। यहाँ के प्रसिद्ध कलाकारों ने भी संस्कृत रंगमंच की प्रतिष्ठा के लिए भरसक प्रयास किया। राष्ट्रीय संस्कृत विश्वविद्यालय, तिरुपति के छात्रों ने प्रत्येक वर्ष संस्कृत नाटकों का मंचन कर सम्पूर्ण देश में इस रंगमंच का परचम लहराया है। पिछले 25 वर्षों से अनवरत संस्कृत नाटकों का मंचन इस दिशा में महत्वपूर्ण पड़ाव है। तिरुपति का यह संस्कृत रंगमंच विश्वविद्यालय एवं तिरुमाला देवस्थान विभाग के अन्तर्गत कार्य करता है। इस प्रकार दक्षिण के प्रदेशों में संस्कृत रंगमंच खूब प्रचलित हुआ और निरन्तर इस कार्य में सक्रिय है।

15.2.2 संस्कृत रंगमंच के लिए समर्पित संस्थायें

संस्कृत रंगमंच का क्षेत्र अत्यन्त व्यापक होने के कारण न केवल भारत में अपितु सम्पूर्ण विश्व में इसके लिए समर्पित संस्थायें कार्य कर रही हैं। उत्तरप्रदेश, राजस्थान, हरियाणा, गुजरात, असम, बिहार, झारखण्ड, गोवा, दक्षिण के प्रदेश तथा मध्यप्रदेश इनमें मुख्य है। हिन्दी रंगमंच एवं विदेशी भाषा के रंगमंच भी संस्कृत के लिए समर्पित रहे हैं। संस्कृत नाटकों का हिन्दी एवं अन्य भाषाओं में अनुवाद कर रंगमंच पर प्रस्तुत करना भी संस्कृत रंगमंच का ही विस्तार है। उत्तरप्रदेश में वाराणसी, प्रयाग, लखनऊ तथा अयोध्या में विभिन्न संस्थाएँ इस दिशा में काम कर रही हैं।

ज्ञानप्रवाह – वाराणसी, केन्द्रीय संस्कृत विश्वविद्यालय का लखनऊ परिसर, केन्द्रीय संस्कृत विश्वविद्यालय का प्रयाग परिसर तथा अयोध्या में तुलसी शोध संस्थान आदि संस्थाओं के माध्यम से अनेक संस्कृत नाटकों अथवा संस्कृत नाटकों का हिन्दी में अनुवाद कर मंचन हुआ है। लखनऊ परिसर द्वारा अब तक 20 से अधिक संस्कृत नाटकों का मंचन हो गया है, जिनमें **जागरूको भव, दूतवाक्य, मध्यमव्यायोग, हास्यचूड़ामणि, मालतीमाधव (1–3 अंक)** तथा **मदनमोहनमालवीयकीर्तिमंजरी** नाटक इत्यादि का मंचन राष्ट्रीय स्तर पर नई, दिल्ली में हो चुका है। प्रो. रामलखन पाण्डेय तथा डॉ. नीरज तिवारी इस कार्य को भलीभाँति कर रहे हैं। वहीं इलाहाबाद स्थित केन्द्रीय संस्कृत विश्वविद्यालय के गंगानाथ झा परिसर द्वारा धूर्तसमागम, गौरीदिगम्बर प्रहसन तथा इन्द्रजाल आदि नाटकों का मंचन प्रो. कविवर जनार्दन प्रसाद पाण्डेय ''मणि'' के नेतृत्व में सम्पन्न हुआ।

राजस्थान में जयपुर, जोधपुर, बीकानेर, भरतपुर, कोटा तथा भीलवाड़ा आदि स्थानों पर संस्कृत रंगमंच के लिए समर्पित संस्थाएँ कार्य रह रही हैं। जयपुर में रवीन्द्र मंच पर राजस्थान संस्कृत अकादमी तथा केन्द्रीय संस्कृत विश्वविद्यालय, जयपुर परिसर के द्वारा पाँच से अधिक संस्कृत नाटकों का मंचन किया गया जिनमें वेणीसंहार तथा लटकमेलक आदि शामिल है। इन नाटकों के **निर्देशक प्रो. रमाकान्त पाण्डेय** तथा **सह निर्देशक डॉ. राधावल्लभ शर्मा** एवं **दीपक भारद्वाज** थे।

वेणीसंहार नाटक की खूबी यह रही कि इसमें निर्देशक एवं सह–निर्देशकों ने भी क्रमशः भीम, युधिष्ठिर एवं अश्वत्थामा का अभिनय प्रस्तुत किया था। इसी क्रम में **युव–तरंग संस्कृत** नाट्य दल की भी महती भूमिका रही। सम्पूर्ण राजस्थान में अब तक दस से अधिक संस्कृत नाटकों का मंचन इसके द्वारा सम्पन्न हुआ। **दीपक भारद्वाज** के निर्देशन में इन नाटकों का मंचन जयपुर की सांस्कृतिक विरासत को द्योतित करता है। **अनिल मारवाड़ी** तथा **सर्वेश व्यास** जैसे मझें हुए कलाकारों ने अपने अभिनय से सबको मुग्ध कर संस्कृत रंगमंच की दिशा में अभूतपूर्व कार्य किया है। ये दोनों संस्कृत साहित्य एवं नाट्य में अच्छी खासी दिलचस्पी रखते हैं। इससे पूर्व जयपुर के ही **जवाहर–कला–केन्द्र** में प्रो.हरिराम–आचार्य के नेतृत्व में संस्कृत नाटकों का मंचन हुआ। भरतपुर तथा भीलवाड़ा आदि स्थानों में भी संस्कृत नाटकों का मंचन खूब हुआ।

संस्कृत रंगकर्म के लिए मध्यप्रदेश की धरती भी समर्पित रही है। यहाँ भोपाल, सागर, उज्जैन तथा इन्दौर आदि भी इस क्षेत्र में अग्रगण्य रहे हैं। भारत–भवन भोपाल में स्थित रंगकर्म के लिए समर्पित संस्था के रूप में कार्य कर रही है। यह 1982 में स्थापित किया गया था। यहाँ संस्कृत नाटकों का मंचन अत्यधिक सुन्दरता के साथ किया गया है। वहीं दूसरी तरफ केन्द्रीय संस्कृत विश्वविद्यालय, भोपाल परिसर के द्वारा भी दशाधिक संस्कृत नाटकों का मंचन हो चुका है। जिनमें त्रिपुरदाह, मत्तविलास, तथा सीताच्छायम् आदि मुख्य हैं। ये सभी नाटक डॉ. सुज्ञान कुमार माहान्ति तथा डॉ. धर्मेन्द्र सिंहदेव के निर्देशन में खेले जा चुके हैं।

सागर में सागर विश्वविद्यालय का संस्कृत विभाग इस दिशा में बहुत महत्त्वपूर्ण एवं प्रशंसनीय कार्य रह रहा है। डॉ. रामजी उपाध्याय से लेकर प्रो. राधावल्लभ त्रिपाठी तक यह कार्य प्रवर्तित होता रहा। वर्तमान में डॉ.नौनिहाल गौतम इस कार्य को बखूबी सँभाल रहे हैं। यहाँ पचास से अधिक संस्कृत नाटकों का मंचन इस बात को पुष्ट एवं प्रमाणित करता है।

उज्जैन में स्थित कालिदास संस्कृत अकादमी, संस्कृत रंगकर्म के लिए बहुत अच्छा कार्य कर रही है। संस्कृत नाटक, संस्कृत को हिन्दी एवं अन्य भाषा में अनूदित नाटकों का मंचन यहाँ किया जाता है। अखिल भारतीय कालिदास समारोह में अब तक 100 से अधिक संस्कृत नाटकों का मंचन हो चुका है।

भोपाल स्थित, **वीणापाणि समिति** द्वारा भी संस्कृत नाटक प्रस्तुत किए जा रहे हैं। ''**श्रीनाट्यम्**'' संघ इन नाटकों का मंचन करने में तत्परता से संलग्न हैं। इस संस्था से प्रो.धर्मेन्द्र सिंहदेव तथा मनोज मिश्र जुड़े हुए हैं। ''**षोडश संस्कार**'' नाम से किया गया नाटक खूब प्रचलित हुआ है। इसके अतिरिक्त हिमाचल, उत्तराखण्ड, त्रिपुरा, कर्नाटक आदि राज्यों में भी अनेक संस्थाएँ कार्य कर रही हैं। हिमाचल स्थित हिमाचल संस्कृत अकादमी तथा केन्द्रीय संस्कृत विश्वविद्यालय, का वेदव्यास परिसर द्वारा भी दस से अधिक संस्कृत नाटकों का मंचन हो चुका है। जिनमें विद्योत्तमा (पद्मश्री प्रो. अभिराज राजेन्द्र मिश्र द्वारा रचित) बालरामायण, कुहनाभैक्षव, आदि शामिल हैं। इस कार्य में डॉ. राधावल्लभ शर्मा, डॉ. मनोज श्रीमाल, डॉ. पुरुषोत्तम एवं डॉ. श्रीनाथ धर द्विवेदी संलग्न रहे। अगरतला में भी पूर्वोक्त विश्वविद्यालय के द्वारा संस्कृत नाटकों का मंचन किया गया, जिनमें अनारकली आदि शामिल रहे। इस कार्य में डॉ. कृपाशंकर शर्मा, डॉ. जितेन्द्र तिवारी तथा डॉ. मंजु प्रमुख रूप से जुड़े रहे। देवप्रयाग (उत्तराखण्ड) में भी संस्कृत रंगमंच की प्रमुख भूमिका रही। इस प्रकार भारत के विभिन्न नगरों में संस्कृत रंगकर्म प्रचलित है।

15.2.3 सोपानम् –केरल

केरल भारत की सांस्कृतिक नगरी है। कला एवं संस्कृति के प्रति यहाँ अत्यधिक प्रेम है। इसी प्रेम को प्रदर्शित करने तथा संस्कृत रंगमंच के माध्यम से संस्कृत नाटकों में निहित मूल तत्त्वों को मनोरंजन के साथ प्रस्तुत करने के लिए **सोपानम्** नामक संस्था की स्थापना की गई। **सोपानम्** वास्तव में संस्कृत रंगकर्म का सोपान ही है। यह संस्था कला एवं संस्कृति के क्षेत्र में शोध एवं नवीन सम्भावनाओं पर जोर देती हैं। मलयालम और संस्कृत में नाटकों की अभूतपूर्व प्रस्तुति इसका विशेष कार्य रहा है। महाकवि भवभूति के नाटक **उत्तररामचरितम्** का हिन्दी में प्रस्तुतीकरण इसकी विशेषोपलब्धि रही है। श्री उदयन वाजपेयी द्वारा इसका अनुवाद किया गया था। भास के 13 नाटक एवं कालिदास के तीनों नाटकों का मंचन भी इस संस्था के द्वारा किया गया है। **भगवदज्जुकम्, टेम्पेस्ट** (Tempest) और Trojen Women का मलयालम भाषा में मंचन भी इसके द्वारा किया गया है।

ग्रीक ड्रामेटिक कम्पनी Volas (वोलोज) के साथ करार कर रामायण और इलियड पर आधारित **इलियाना** का मंचन भी इसके द्वारा किया गया है। महाकवि एवं नाटककार भास पर चतुर्थ अन्तर्राष्ट्रीय रंगमंच उत्सव, त्रिवेन्द्रम में आयोजित कर इस संस्था ने संस्कृत रंगकर्म के प्रति अपनी अपार श्रद्धा प्रकट की है। **सोपानम्** ने अब तक भारत एवं भारत के बाहर अनेक स्थानों पर सफल प्रस्तुतियाँ की है जिनमें कालिदास अकादमी, उज्जैन, भरत रंग महोत्सव दिल्ली, नेशनल स्कूल ऑफ ड्रामा, दिल्ली, पृथ्वी थियेटर फेस्टिवल, मुम्बई, जापान, कोरिया, पौलेण्ड, ग्रीस आदि देश शामिल हैं।

कवलम नारायण पणिक्कर जैसी महान् विभूति ने इस संस्था की स्थापना की। हनीब तनवीर, विजय तेंदुलकर, रतन थियाम तथा गिरीश कर्नाड जैसे प्रसिद्ध नाटककारों के साथ कार्य करके मलयालम में अनूदित अनेक संस्कृत नाटकों का मंचन किया गया।

सोपानम् के माध्यम से पणिक्कर ने **वाचिक–अभिनय** पर बल दिया। अनेक कार्यशालाएँ इस विषय को लेकर आयोजित की गई।

1964 में संस्थापित यह संस्था **सोपान–संगीत**, मोहिनी अट्टम, आधुनिक परिप्रेक्ष्य में संस्कृत रंगमंच तथा लोक रंगमंच के लिए समर्पित है। इसके द्वारा प्रदर्शित नाटकों की सूची निम्न है –

क्र.सं.	नाटक का नाम	वर्ष	लेखक	निर्देशक
1.	साक्षी (मलयालम)	1964	के.एन.पणिक्कर	कुमार वर्मा एवं डॉ. के.के.पणिक्कर
2.	देवावतार (मलयालम)	1973	के.एन.पणिक्कर	कुमार वर्मा
3.	तिरुवाजिथान (मलयालम)	1974	के.एन.पणिक्कर	मणि अलंचेरी
4.	अवनावनकताम्बा (मलयालम)	1975	के.एन.पणिक्कर	जी.अरविन्दन
5.	भगवदज्जुकम् (मलयालम)	1976	के.एन.पणिक्कर (संस्कृत से अनूदित)	के. एन. पणिक्कर
6.	ओट्टयन (मलयालम)	1977	के.एन.पणिक्कर (संस्कृत से अनूदित)	कुमार वर्मा
7.	मध्यमव्यायोग (संस्कृत)	1979	महाकवि भास	के. एन. पणिक्कर
8.	शाकुन्तलम् (संस्कृत)	1982	महाकवि कालिदास	के. एन. पणिक्कर
9.	विक्रमोर्वशीयम् (संस्कृत)	1982	महाकवि कालिदास	के. एन. पणिक्कर
10.	कर्णभारम् (संस्कृत)	1984	महाकवि भास	के. एन. पणिक्कर
11.	उरुभङ्गम् (संस्कृत)	1987	महाकवि भास	के. एन. पणिक्कर
12.	स्वप्नवासवदत्तम् (संस्कृत)	1993	महाकवि भास	के. एन. पणिक्कर
13.	दूतवाक्यम् (संस्कृत)	1996	महाकवि भास	के. एन. पणिक्कर
14.	विक्रमोर्वशीयम् (संस्कृत)	1996	महाकवि कालिदास	के. एन. पणिक्कर
15.	प्रतिमानाटकम्	1999	महाकवि भास	के. एन. पणिक्कर
16.	चारुदत्तम्	2004	महाकवि भास	के. एन. पणिक्कर
17.	विक्रमोर्वशीयम् (नवीनम्)	2005	महाकवि कालिदास	के. एन. पणिक्कर
18.	मालविकाग्निमित्रम् (संस्कृत)	2006	महाकवि कालिदास	के. एन. पणिक्कर
19.	उत्तररामचरित (हिन्दी)	2007	महाकवि भवभूति	के. एन. पणिक्कर

इसके कलाकारों में शिवकुमार, के.सतीश कुमार, जी.एस.एल. सजीकुमार कोमलन नायर, जी.वी.गिरीशन, एस.अनिल कुमार, गिरिजाकुमारी, जे.मालू, आर.एस.सरिता, जे. एल.साजी, आर.सुरेश कुमार, पी.एस.पी. मणिकटे, पी.गोपीनाथ, सीजा, रघुनाथ, मालू लाल तथा स्मिता मुख्य हैं।

इस प्रकार कवलम नारायण पणिक्कर द्वारा सुवासित यह **सोपान** नाट्यकानन भारतीय रंगमंच की परम्परा एवं विकास के पथ का महत्त्वपूर्ण पड़ाव है। संस्कृत रंगमंच को

आधुनिकता के साथ जोड़ने का सम्पूर्ण श्रेय इस संस्था को जाता है। हम सभी गौरवान्वित है कि संस्कृत रंगमंच इस रूप में आज हमारे समक्ष हैं।

15.2.4 युवतरंग – राजस्थान

राजस्थान की भूमि कला, संस्कृति, रंगमंच तथा कविता के लिए हमेशा समर्पित रही है। संस्कृत नाटकों के प्रदर्शन की सुदीर्घ परम्परा यहाँ रही है। राजा–महाराजाओं के समय से ही यह कार्य प्रायः चलता रहा है। इसी क्रम में **युवतरंग** नामक संस्कृत दल भी उभरकर सामने आया। केन्द्रीय संस्कृत विश्वविद्यालय, जयपुर परिसर के पूर्व छात्रों द्वारा गठित यह मंच युवाओं को संस्कृत रंगमंच के लिए प्रेरित एवं अभ्यस्त करता है। इसकी स्थापना के बीज का मंगल सूत्रपात प्रसिद्ध नाटककार प्रो.रमाकान्त पाण्डेय के द्वारा सम्पन्न हुआ। राजस्थानी संस्कृति के मूल तत्त्वों को संस्कृत रंगमंच के साथ तादात्म्य सम्बन्ध से प्रस्तुत करना इस संस्कृत नाट्य दल का मुख्य उद्देश्य है। इनकी प्रस्तुतियों में आहार्य एवं मंच सज्जा इत्यादि में राजस्थानी संस्कृति का पुट अवश्य रहता है। इसकी स्थापना वर्ष 2005 में हुई। डॉ. जानकीवल्लभ शर्मा, श्री सर्वेश व्यास, श्री कान्ताप्रसाद शर्मा, डॉ. नमिता मित्तल तथा प्रो. सुरेन्द्र कुमार शर्मा इत्यादि सुधी जनों के द्वारा पल्लवित एवं पुष्पित यह संस्था सक्रिय रूप से कार्य कर रही है।

प्रारम्भिक वर्ष में मात्र 11 सदस्यों वाले इस दल में 45 सक्रिय कुशल अभिनेता हैं जिनमें श्री दीपक भारद्वाज, श्री संदीप शर्मा, डॉ. फिरोज, डॉ. राधावल्ल्भ शर्मा, श्रीमती अन्तिमबाला इत्यादि मुख्य हैं। अब तक इस संस्था के द्वारा संस्कृत नाटकों की अनेक प्रस्तुतियाँ हो चुकी हैं, जिनमें अभिज्ञानशाकुन्तल, रत्नावली, पलाण्डुमण्डनम्, भगवज्जुकीयम्, मध्यमव्यायोग, वेणीसंहार, प्रतापविजय, प्रतिज्ञा–यौगन्धरायण, कुन्दमाला, मालतीमाधव तथा बालरामायण मुख्य हैं।

भगवज्जुकीय का तो दस से ज्यादा बार देश के विभिन्न स्थानों पर मंचन होना संस्कृत रंगमंच की वैश्विकता का जीता–जागता प्रमाण है। इसके संस्थापक अध्यक्ष श्री दीपक भारद्वाज हैं जो वर्तमान में राजकीय उच्च माध्यमिक विद्यालय, देवगढ़ (राजसमन्द) में प्रधानाचार्य के पद पर कार्यरत हैं।

दीपक भारद्वाज और संदीप शर्मा के निर्देशकत्व और सहनिर्देशकत्व में यह संस्था निरन्तर संस्कृत रंगमंच को जनप्रिय बनाने के लिए प्रयासरत है।

15.2.5 ज्ञानप्रवाह–वाराणसी

वाराणसी कला एवं संस्कृति की वाहिका नगरी है। शिव के त्रिशूल पर रहने वाली यह पौराणिक नगरी भारत की अस्मिता का जीता–जागता उदाहरण है। कला तो इसके रोम–रोम में समाई हुई है। इसी सांस्कृतिक वैभव को प्रकट करने वाले अनेक संस्थान यहाँ कार्यरत हैं। जिनमें **ज्ञानप्रवाह** भी मुख्य हैं। अपने नाम के सर्वथा अनुरूप यह संस्था काशी की ज्ञानगंगा को अविरल रूप से प्रवाहित करने में संलग्न है। वर्ष 1997 में स्थापित यह संस्था कलकत्ता के निवासी **श्रीमती विमला पोद्दार** के द्वारा भारत के ज्ञान–वैभव को सर्वत्र फैलाने के लिए की गई। संस्कृत नाटकों का अभिनय नूतन–विधि के साथ करना ही इसका मुख्य ध्येय रहा है। वर्ष 2000 में प्रो. कृष्णकान्त शर्मा के निर्देशन में **अभिज्ञानशाकुन्तल** नामक नाटक का मंचन हुआ। जिसमें संगीत, आहार्य एवं प्रस्तुतीकरण पक्ष इतना प्रबल था कि काशी में लोग नाटक देखने की लिप्सा में मग्न हो गए। विशाल स्तर पर इसका मंचन किया गया। सबसे विशेष बात

इसमें यह रही कि इसमें शासन का भी भरपूर सहयोग था। तत्कालीन राज्यपाल विष्णुकान्त शास्त्री इसमें उपस्थित थे। पद्मश्री प्रो. अभिराज राजेन्द्र मिश्र ने इस नाटक को देखकर इसकी भूरि–भूरि प्रशंसा की थी। कालिदास समारोह के द्वारा **विक्रमोर्वशीय** नाटक का मंचन हुआ।

सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय द्वारा आयोजित प्राच्य संस्कृत सम्मेलन (Oriental Sanskrit Conference) में इसकी रमणीय प्रस्तुति की गई। इसके नाट्य निर्देशक भी प्रो. कृष्णकान्त शर्मा थे। यह नाटक भोपाल के भारत–भवन में भी मंचित हुआ था। प्रो. प्रेमलता शर्मा, प्रो. कमलेशदत्त त्रिपाठी तथा प्रो. शिवि चन्द्रशेखर जैसे नामचीन कलाकारों ने इसमें भूमिका का निर्वाह किया। संगीत नाटक अकादमी की ओर से यह नाटक स्वतन्त्रता–भवन में भी मंचित हुआ। बतौर कलाकार प्रो. कृष्णकान्त शर्मा ने अनेक संस्कृत नाटकों में उद्दाम अभिनय के बलबूते सम्पूर्ण रंगमंच के इतिहास में अपनी धाक जमाई। वर्ष 1974–75 में जब आप आचार्य कक्षा में पढ़ते थे तब **मालविकाग्निमित्र** नाटक में प्रदत्त भूमिका का आपने अभिनय किया। यह नाटक प्रो. विश्वनाथ भट्टाचार्य के निर्देशकत्व में खेला गया। प्रो. कृष्णकान्त शर्मा की अभिनय–प्रतिभा इतनी सम्मोहिनी थी कि दर्शक उन्हें ही देखना चाहते थे। **उत्तररामचरित** में सुमन्त तथा सूत्रधार का अभिनय कर इन्होंने इसका प्रदर्शन भी किया था। **मुद्राराक्षस** में प्रो. कमलेशदत्त त्रिपाठी के साथ–साथ इन्होंने राक्षस की भूमिका का सफलतापूर्वक अभिनय किया। **मालविकाग्निमित्र** में सारथि तथा हरदत्त की भूमिका का अभिनय भी इन्होंने किया। प्रो. कृष्णकान्त शर्मा बहुमुखी प्रतिभा के धनी रहे हैं। नाटकों में अभिनय के साथ–साथ इन्होंने कई नाटकों का निर्देशन भी किया जिनमें मालविकाग्निमित्र तथा चारुदत्त मुख्य हैं। प्रो. कमलेशदत्त त्रिपाठी और इनकी जोड़ी सर्वत्र प्रसिद्ध थी। **चारुदत्त** नाटक में ही इन दोनों ने पारिपार्श्विक की भूमिका का सफलतापूर्वक अभिनय किया।

इस प्रकार यह संस्था भारतीय रंगमंच अथवा संस्कृत रंगमंच के लिए सर्वथा समर्पित भाव से कार्य कर रही है।

15.2.6 कालिदास संस्कृत अकादमी, उज्जैन

उज्जयिनी, उज्जैन अथवा अवन्तिका नगरी का वैशिष्ट्य पुराणों में बहुत्र प्राप्त होता है। महाकाल की यह नगरी प्राचीन काल से ही नाट्य, रंगमंच एवं कला के लिए सम्पूर्ण विश्व में प्रसिद्ध रही है। स्वयं महाकाल नटराज के नाम से जाने जाते हैं। महाकवि कालिदास के जीवन दर्शन तथा साहित्य के संदेशों को जन–जन तक पहुँचाने के लिए इस अकादमी की स्थापना की गई है।

संस्कृत नाटकों का हिन्दी एवं हिन्दीतर भाषाओं में अनुवाद कर उनका प्रस्तुतीकरण करना ही इस अकादमी का उद्देश्य रहा है। नाट्यशास्त्र के अनुकल नाट्यमण्डप बनाकर प्राचीन शैली में संस्कृत नाटकों का मंचन कराना तथा रंगमंचीय गतिविधियों जैसे कार्यशाला, वार्ता, फिल्म तथा कला आदि की प्रस्तुति ही इसका वास्तविक उद्देश्य रहा है।

यह अकादमी नाट्यशास्त्र के नियमों के अनुसार बनायी गयी है। अकादमी के भवन का नाम **नवमांश** तथा **आश्रय** रखा गया है। सबसे दिलचस्प बात यह है कि इसके प्रकोष्ठों के नाम भी कालिदास की रचनाओं को आधार मानकर रखे गए हैं। जैसे –

1. कुमारसम्भवम् – निदेशक–प्रकोष्ठ
2. विक्रमोर्वशीयम् – कार्यालय/संगणक कक्ष
3. अभिज्ञानशाकुन्तलम् – प्रदर्शनी कक्ष
4. रघुवंशम् – शोध संगोष्ठी कक्ष
5. मालविकाग्निमित्रम् – शोध एवं प्रकाशन कक्ष
6. मेघदूतम् – सभा कक्ष
7. ऋतुसंहारम् – सभा कक्ष
8. अभिरंग नाट्यगृह – रंगमंच
9. आचार्यकुल – अध्ययन कक्ष

वर्ष 1978 में इस अकादमी की स्थापना की गई। वर्ष 1979 से इसका कार्य प्रारम्भ हुआ। मध्यप्रदेश शासन के संस्कृति विभाग से संचालित यह अकादमी कमलेशदत्त त्रिपाठी, प्रो. श्रीनिवास रथ, डॉ. कृष्णकान्त चतुर्वेदी, सुप्रसिद्ध कवि डॉ. मिथिला प्रसाद त्रिपाठी तथा डॉ. बलदेवानन्द सागर इत्यादि महनीय एवं गणमान्य विद्वानों से भरपूर रही। कला एवं संस्कृति को बढ़ावा देने के लिए यह अकादमी प्रतिवर्ष **अखिल भारतीय कालिदास समारोह** का आयोजन करती है। यह समारोह देवप्रबोधिनी एकादशी को प्रारम्भ होकर सात दिनों तक चलता है। इसमें राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय संगोष्ठियाँ, व्याख्यानमाला **संस्कृत कवि सम्मेलन** अखिल भारतीय अन्तर्विश्वविद्यालयीय वाद–विवाद प्रतियोगिता, कालिदास के नाटकों का हिन्दी एवं अन्य भारतीय भाषाओं तथा विदेशी भाषाओं में प्रदर्शन, भारत एवं भारत से बाहर कलाकारों द्वारा लोकसंस्कृति से सम्पृक्त नाटकों का मंचन किया जाता है। यह अकादमी निम्नलिखित कार्यक्रमों का भी सफल आयोजन करती है। जिनमें –

1. शास्त्री नृत्य प्रशिक्षण शिविर – उज्जैन
2. ग्रीष्मकालीन प्रशिक्षण शिविर – उज्जैन
3. सारस्वतम् (प्रथम) – रतलाम
4. संस्कृत सम्भाषण शिविर – मध्यप्रदेश के विभिन्न दस जिलों में
5. शास्त्र व्याख्या पाठ सत्र – होशंगाबाद
6. बालनाट्यम् – इन्दौर
7. संस्कृत गौरव दिवस – विदिशा
8. कल्पवल्ली – उज्जैन
9. संस्कृत–नाट्य प्रशिक्षण शिविर – उज्जैन
10. संस्कृत नाट्य समारोह – उज्जैन
11. वाल्मीकि समारोह – चित्रकूट
12. अखिल भारतीय कालिदास समारोह – उज्जैन
13. भवभूति समारोह – ग्वालियर
14. वर्णागम शिविर – महेश्वर
15. सारस्वतम् (द्वितीय) – सागर

16. भर्तृहरि प्रसंग – उज्जैन
17. वनजन महोत्सव – बान्धवगढ़
18. भोज महोत्सव – धर
19. बाणभट्ट समारोह – रेवा
20. शंकर समारोह – ओंकारेश्वर
21. राजशेखर समारोह – जबलपुर

स्वर्गीय पद्मभूषण पं. सूर्यकान्त व्यास ने सर्वप्रथम उज्जैन में कालिदास जयन्ती मनाने की शुरुआत की। इस कार्य में उनको मध्यप्रदेश शासन का भरपूर सहयोग प्राप्त हुआ। तत्कालीन मुख्यमन्त्री स्वर्गीय डॉ. कैलाश नाथ काटजू इस प्रस्ताव से अत्यन्त प्रभावित थे तथा उन्होंने राष्ट्रीय स्तर पर इसे मनाने का फैसला लिया। मध्यप्रदेश कला परिषद् के बैनर तले 1958 में **प्रथम कालिदास समारोह** का आगाज हुआ। रूस, जर्मनी, पोलेण्ड, ईरान तथा चीन आदि देशों के प्रतिनिधियों ने इसमें भाग लिया। परिषद् के द्वारा इस समारोह के अन्तर्गत ही नाटकों के मंचन का कार्य किया गया जिनमें डॉ. वी. राघवन तथा गौरीनाथ शास्त्री ने नाटक में अभिनय भी किया तथा निर्देशन भी किया। कालिदास के जीवन पर आश्रित अनेक हिन्दी नाटकों का भी यहाँ मंचन हुआ। **अभिज्ञान–शाकुन्तल** का एथेन्स के समूह के द्वारा ग्रीक भाषा में तथा ग्रीक नाट्य शैली में अभिनय 12 नवम्बर, 1986 को हुआ। तदनु भास के **अविमारक** का टोक्यो की नाट्यकम्पनी **वासेदा नाट्य कम्पनी** द्वारा जापानी भाषा एवं जापानी शैली में 20 नवम्बर, 1988 को मंचन होना एक अद्भुत कार्य था। 2020 में इस समारोह के अन्तर्गत **कालिदास–साहित्य में वर्णित नायिकाओं** पर आधारित संस्कृत नाटक **दीपशिखा** का मंचन हुआ। डॉ. सतीश दवे के निर्देशन में हिन्दी नाटक **मालविकाग्निमित्र** का मंचन हुआ। 2017 में रूपवाणी, वाराणसी संस्था द्वारा **पंचरात्र का हिन्दी में** मंचन किया गया तथा **कालिदासचरित** नामक हिन्दी नाटक को मालवी शैली में प्रस्तुत किया गया। 2016 में **सोपानम्** द्वारा **अभिज्ञान शाकुन्तल** की सुन्दर प्रस्तुति दी गई तथा **भगवज्जुकम्** की मलयालम में प्रस्तुति की गई। वर्ष 2021 में बुन्देलखण्ड नाट्यकला समिति, झाँसी द्वारा **मालविकाग्निमित्र** की प्रस्तुति दी गई। 2011 में यक्षगान शैली पर आधारित **अभिज्ञानशाकुन्तल** की प्रस्तुति की गई। इस प्रकार विभिन्न निर्देशकों के निर्देशकत्व में कालिदास अकादमी, उज्जैन में विविध संस्कृत नाटकों का मंचन किया गया। यह अकादमी भारतीय रंगमंच एवं भारतीय कलाओं के उन्नयन के लिए निरन्तर कार्य कर रही है।

15.2.7 सागर विश्वविद्यालय, सागर

मध्यप्रदेश की पावन धरती पर सागर में स्थित सागर विश्वविद्यालय एक प्रतिष्ठित संस्था है। न केवल भारत में अपितु विश्व के अनेक देशों में इसकी धाक है। यह धाक ज्ञान के विभिन्न सोपानों का अनूठा प्रयोग करने से हुई है। इस विश्वविद्यालय की स्थापना डॉ. हरिसिंह गौर ने 18 जुलाई 1946 को अपनी पूँजी से की थी। अपनी स्थापना के समय यह भारत का 18वाँ विश्वविद्यालय था। किसी एक व्यक्ति के दान से स्थापित होने वाला यह देश का एकमात्र विश्वविद्यालय है। 27 मार्च, 2008 से इसे केन्द्रीय विश्वविद्यालय की श्रेणी प्रदान की गई है। इस विश्वविद्यालय का संस्कृत विभाग संस्कृत रंगमंच के सदैव समर्पित रहा है। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग (UGC) ने इस विभाग को 1994 से 2006 तक और फिर जुलाई 2007 से 2012 तक

संस्कृत में महत्वपूर्ण शोध के लिए अधिकृत किया। संस्कृत नाटकों के प्रदर्शन के लिए यह विश्वविद्यालय विगत अनेक वर्षों से कार्य कर रहा है। डॉ. वी.एम.आप्टे, प्रो.रामजी उपाध्याय, प्रो. राधावल्लभ त्रिपाठी, प्रो. कुसुम भूरिया दत्ता, प्रो. आनन्द प्रकाश त्रिपाठी, डॉ. नौनिहाल गौतम, डॉ. रामहेत गौतम, डॉ. संजय कुमार, डॉ. शशि कुमार सिंह और किरण आर्य के निर्देशकत्व में संस्कृत नाटकों की प्रस्तुतियाँ उल्लेखनीय रही है।

कालिदास तथा भास के समस्त नाटकों का मंचन तथा आधुनिक संस्कृत साहित्य के नाटकों का मंचन यहाँ किया गया था।

15.2.8 राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान (केन्द्रीय संस्कृत विश्वविद्यालय) वसन्तोत्सव तथा कौमुदी–महोत्सव

राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान (वर्तमान में केन्द्रीय संस्कृत विश्वविद्यालय) एक बहुपरिसरीय (Multi Campuses) विश्वविद्यालय है। वर्ष 2020 में इसे संसद के विशेष अधिनियम के तहत केन्द्रीय विश्वविद्यालय का दर्जा दिया गया है। प्रो. वेम्पटि कुटुम्ब शास्त्री के सत्संकल्प को पूर्ण करने के लिए यह विश्वविद्यालय प्रत्येक वर्ष **कौमुदी–महोत्सव** का आयोजन करता है। विश्वविद्यालय के समस्त परिसर नई दिल्ली में एकत्रित होकर संस्कृत नाटकों का मंचन करते हैं। सर्वश्रेष्ठ अभिनय करने वाले परिसर को पुरस्कृत किया जाता है। गौरतलब है कि ये परिसर भारत के विभिन्न राज्यों में अवस्थित हैं। वहाँ की लोक–संस्कृति इन नाटकों में खूब दिखाई जाती है। ये सभी नाटक भारत की संस्कृति का प्रतिनिधित्व करते हैं। यह उपक्रम अन्तः परिसरीय संस्कृत नाट्यस्पर्धा के नाम से विख्यात है। वर्ष 2000 से इन नाटकों के मंचन की शुरुआत हुई। इसका सम्पूर्ण श्रेय प्रो. वेम्पटि कुटुम्ब शास्त्री को जाता है। नवम्बर 2007 से यह कौमुदी–महोत्सव के नाम से प्रसिद्ध हुआ। तदनु 2008 से प्रो. राधावल्लभ त्रिपाठी के संरक्षकत्व में इसमें नूतन प्रयोग किए गए। छात्रों के लिए विशिष्ट प्रशिक्षण (Special Training) की व्यवस्था की गई। भोपाल–परिसर में नाट्यशास्त्र अनुसन्धान केन्द्र की स्थापना की गई। कौमुदीमित्रानन्द (प्रकरण) वृषभानुजा (नाटिका) प्रियदर्शिका (नाटिका) तथा अनेक आधुनिक संस्कृत नाटकों का मंचन हुआ। सम्पूर्ण विश्व में यह ऐसा रंगमंच है जहाँ छात्र अपनी अभिनय कुशलता प्रकट करते हैं। पणिक्कर के निर्देशकत्व में भास के नाटकों का कुशल मंचन किया गया। अब तक 160 नाटकों की सफल प्रस्तुतियाँ इस विराट् मंच पर हो चुकी हैं। अधिकांश प्रस्तुतियों के समन्वयक प्रो. रमाकान्त पाण्डेय रहे हैं।

पूर्व में यह **वसन्तोत्सव** के नाम से प्रख्यात था तथा इसकी शुरुआत 3,4 मार्च 2004 से हुई। अब तक प्रदर्शित नाटकों की सूची निम्न है –

प्रथम वसन्तोत्सव (3–4 मार्च, 2004)

डॉ. अम्बेडकर प्रेक्षागृह, आन्ध्र भवन, नई दिल्ली

1. भगवदज्जुकीयम् – गुरुवायुर परिसर, केरल
2. सभिकद्यूतकरम् – भोपाल परिसर, मध्यप्रदेश
3. जागरूको भव – लखनऊ परिसर, उत्तरप्रदेश
4. कर्णभारम् – श्रीराजीव गाँधी परिसर, शृङ्गेरी, कर्नाटक
5. संस्कृतोद्गारम् – रणवीर परिसर, जम्मू
6. मुद्राराक्षसम् – गरली परिसर, हिमाचल प्रदेश

7. अभिज्ञानशाकुन्तमल् – जयपुर परिसर, राजस्थान
8. मदनदहनम् – सदाशिव परिसर, पुरी (उडीसा)

इसमें ''भगवदज्जुकीयम्'' की प्रस्तुति ने दर्शकों का मन मोह लिया।

द्वितीय वसन्तोत्सव 1,2 मार्च 2005

डॉ. कमानी प्रेक्षागृह, नई दिल्ली

1. कर्णाश्वत्थामीयम् – जयपुर परिसर, राजस्थान
2. चारुदत्तम् – श्रीराजीव गाँधी परिसर, शृङ्गेरी, कर्नाटक
3. चम्पकराम – गुरुवायुर परिसर, केरल
4. राष्ट्रं नः प्राणाः – रणवीर परिसर, जम्मू
5. उरुभङ्गम् – गरली परिसर, हिमाचल प्रदेश
6. दूतवाक्यम् – लखनऊ परिसर, उत्तरप्रदेश
7. यमराजकीयम् – के.जे.सौमय्याविद्यापीठपरिसर, मुम्बई (महाराष्ट्र)
8. कृतकौमुदम् – भोपाल परिसर, मध्यप्रदेश

इसमें **कर्णाश्वत्थामीयम्** तथा **चम्पकराम** ने बेहतरीन प्रदर्शन किया। कर्णाश्वथामीयम् के नाट्य निर्देशक प्रो. रमाकान्त पाण्डेय तथा सह निर्देशक डॉ. राधावल्लभ शर्मा थे।

तृतीय वसन्तोत्सव 23–24 फरवरी, 2006

डॉ. कमानी प्रेक्षागृह, नई दिल्ली

1. अश्वत्थामा – राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान, मुख्यालय, नई दिल्ली
2. नागानन्दम् – गुरुवायुर परिसर, केरल
3. मध्यमव्यायोग – लखनऊ परिसर, उत्तरप्रदेश
4. मत्तविलासप्रहसनम् – भोपाल परिसर, मध्यप्रदेश
5. दूतघटोत्कचम् – गरली परिसर, हिमाचल प्रदेश
6. अबलासामर्थ्यम् – गङ्गानाथ झा परिसर, प्रयाग, उत्तरप्रदेश
7. मृच्छकटिकम् – श्रीराजीव गाँधी परिसर, शृङ्गेरी, कर्नाटक
8. स्नुषाविजयम् – जयपुर परिसर, जयुपर, राजस्थान
9. देहि पादपल्लवमुदारम् – सदाशिव परिसर, पुरी (उडीसा)
10. भूकैलाशम् – के.जे.सौमय्याविद्यापीठपरिसर, मुम्बई (महाराष्ट्र)
11. सुभद्राहरणम् – रणवीर परिसर, जम्मू

भोपाल परिसर के प्रहसन ''मत्तविलास'' का बेहतरीन अभिनय इसमें प्रस्तुत किया गया। डॉ. सुज्ञान कुमार माहान्ति इसके नाट्य निर्देशक थे।

चतुर्थ वसन्तोत्सव 20–22 फरवरी, 2007

L.T.G. प्रेक्षागृह, नई दिल्ली

1.	दुर्योधनम्	–	राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान, मुख्यालय, नई दिल्ली
2.	स्वप्नवासवदत्तम्	–	गुरुवायुर परिसर, केरल
3.	हास्यचूड़ामणि	–	लखनऊ परिसर, उत्तरप्रदेश
4.	प्रतिज्ञाश्वत्थामीयम्	–	भोपाल परिसर, मध्यप्रदेश
5.	राजवैभवम्	–	सदाशिव परिसर, पुरी (उडीसा)
6.	प्रसन्नराघवम्	–	श्रीराजीव गाँधी परिसर, शृङ्गेरी, कर्नाटक
7.	पंचरात्रम्	–	गरली परिसर, हिमाचल प्रदेश
8.	बालचरितम्	–	जयपुर परिसर, जयुपर, राजस्थान
9.	चाणक्यविजयम्	–	रणवीर परिसर, जम्मू
10.	रघुदासस्य पत्रम्	–	गङ्गानाथ झा परिसर, प्रयाग, उत्तरप्रदेश
11.	विक्रमोर्वशीयम्	–	के.जे.सौमय्याविद्यापीठपरिसर, मुम्बई (महाराष्ट्र)

इसमें दुर्योधन, स्वप्नवासवदत्तम् तथा बालभारतम् की प्रस्तुतियाँ रोमांचकारी रही।

पंचम कौमुदी महोत्सव (वसन्तोत्सव से कौमुदी महोत्सव नामकरण)

28–30 नवम्बर, 2007

L.T.G. प्रेक्षागृह, नई दिल्ली

1.	कौरवौरवम्	–	राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान, मुख्यालय, नई दिल्ली
2.	अभिषेकनाटकम्	–	श्रीराजीव गाँधी परिसर, शृङ्गेरी, कर्नाटक
3.	मालविकाग्निमित्रम्	–	गुरुवायुर परिसर, केरल
4.	त्रिपुरदाह	–	भोपाल परिसर, मध्यप्रदेश
5.	लटकमेलकम्	–	जयपुर परिसर, जयुपर, राजस्थान
6.	भर्तृहरिनिर्वेदम्	–	सदाशिव परिसर, पुरी (उडीसा)
7.	चण्डकौशिकम्	–	लखनऊ परिसर, उत्तरप्रदेश
8.	कर्पूरमंजरी	–	गरली परिसर, हिमाचल प्रदेश
9.	धूर्तसमागम	–	गङ्गानाथ झा परिसर, प्रयाग, उत्तरप्रदेश
10.	अविमारकम्	–	रणवीर परिसर, जम्मू
11.	मदनकेतुचरितम्	–	के.जे.सौमय्याविद्यापीठपरिसर, मुम्बई (महाराष्ट्र)
12.	यक्षगानम्	–	सुधन्वमोक्ष राजीव गान्धी परिसर, शृंगेरी, कर्नाटक

इस महोत्सव में यक्षगान का संस्कृत शैली में प्रस्तुतीकरण अत्यन्त रोचक एवं प्रशंसनीय रहा।

षष्ठ कौमुदी महोत्सव

24–26 नवम्बर, 2008

L.T.G. प्रेक्षागृह, नई दिल्ली

1. यक्षगानम् – राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान, मुख्यालय, नई दिल्ली
2. पंचकल्याणी – गुरुवायुर परिसर, केरल
3. आश्चर्यचूड़ामणि – श्रीराजीव गाँधी परिसर, शृङ्गेरी, कर्नाटक
4. सीताच्छायम् – भोपाल परिसर, मध्यप्रदेश
5. सावित्रीचरितम् – रणवीर परिसर, जम्मू
6. प्रतिज्ञायौगन्धरायणम् – जयपुर परिसर, जयुपर, राजस्थान
7. रत्नावली – गरली परिसर, हिमाचल प्रदेश
8. गौरीदिगम्बरप्रहसनम् – गङ्गानाथ झा परिसर, प्रयाग, उत्तरप्रदेश
9. विवाहविडम्बनम् – लखनऊ परिसर, उत्तरप्रदेश
10. उत्तररामचरितम् – सदाशिव परिसर, पुरी (उडीसा)
11. राष्ट्रं रक्षति रक्षितम् – के.जे.सौमय्याविद्यापीठपरिसर, मुम्बई (महाराष्ट्र)

इस महोत्सव में यक्षगान, आश्चर्यचूड़ामणि, सीताच्छायम्, विवाहविडम्बनम् तथा राष्ट्रं रक्षति रक्षितम् की प्रस्तुतियाँ मनोहर रही। इसके साथ–साथ तत्कालीन कुलपति प्रो. राधावल्लभ त्रिपाठी ने दो आमन्त्रित प्रस्तुतियों को भी इसमें शामिल करवाया जिनमें **मालविकाग्निमित्रम्,** कालिदास संस्कृत अकादमी, उज्जैन तथा **भगवदज्जुकीयम्**, नीपारंगमण्डली, लखनऊ शामिल है।

सप्तम कौमुदी महोत्सव

10–12 नवम्बर, 2009

प्यारेलाल प्रेक्षागृह, नई दिल्ली

1. अभिज्ञानशाकुन्तल (प्रथमांक) – भोपाल परिसर, मध्यप्रदेश
2. प्रतिमानाटकम् – सदाशिव परिसर, पुरी (उडीसा)
3. अभिज्ञानशाकुन्तल (द्वितीयांक) – रणवीर परिसर, जम्मू
4. अभिज्ञानशाकुन्तल (तृतीयांक) – गरली परिसर, हिमाचल प्रदेश
5. अभिज्ञानशाकुन्तल (चतुर्थांक) – श्रीराजीव गाँधी परिसर, शृङ्गेरी, कर्नाटक
6. इन्द्रजालम् – गङ्गानाथ झा परिसर, प्रयाग, उत्तरप्रदेश
7. अभिज्ञानशाकुन्तल (पंचमांक) – लखनऊ परिसर, उत्तरप्रदेश
8. अभिज्ञानशाकुन्तल (षष्ठांक) – गुरुवायुर परिसर, केरल
9. अभिज्ञानशाकुन्तल (सप्तांक) – जयपुर परिसर, जयुपर, राजस्थान

इस महोत्सव में अधोलिखित प्रस्तुतियाँ आमन्त्रित की गई –

1. रासलीला – श्री राधामाधवसंस्कृतमहाविद्यालय, मणिपुर
2. विक्रमोर्वशीय – नाट्य परिषद्, सागर, मध्यप्रदेश

3. कुन्दमाला – श्री कमल वशिष्ठ (प्रसिद्ध रंगकर्मी) की प्रस्तुति

अष्टम कौमुदी महोत्सव

25–27 अक्टूबर, 2010

L.T.G. प्रेक्षागृह, नई दिल्ली

1. कर्णभारम् – गुरुवायुर परिसर, केरल
2. मध्यमव्यायोग – जयपुर परिसर, जयुपर, राजस्थान
3. पंचरात्रम् – के.जे.सौमय्याविद्यापीठपरिसर, मुम्बई (महाराष्ट्र)
4. प्रतिज्ञायौगन्धरायणम् – भोपाल परिसर, मध्यप्रदेश
5. दूतवाक्यम् – गङ्गानाथ झा परिसर, प्रयाग, उत्तरप्रदेश
6. दरिद्रचारुदत्तम् – गरली परिसर, हिमाचल प्रदेश
7. स्वप्नवासवदत्तम् – श्रीराजीव गाँधी परिसर, शृङ्गेरी, कर्नाटक
8. बालचरितम् – सदाशिव परिसर, पुरी (उडीसा)
9. अविमारक – लखनऊ परिसर, उत्तरप्रदेश
10. प्रतिमानाटक – रणवीर परिसर, जम्मू

इस महोत्सव में **दरिद्रचारुदत्त** की प्रस्तुति छात्राओं द्वारा की गई इसमें एक भी छात्र नहीं था, पुरुष पात्र भी छात्राएँ थी। विश्वविद्यालय के इतिहास में यह पहला प्रयोग था। इसके नाट्य निर्देशक प्रो. विजयपाल शास्त्री तथा सहनिर्देशक प्रो. किशोर कुमार दलाई, डॉ. मोहिनी अरोड़ा एवं डॉ. राधावल्लभ शर्मा थे।

नवम कौमुदी महोत्सव

30–01 फरवरी, 2012

L.T.G. प्रेक्षागृह, नई दिल्ली

1. उत्तररामचरितम् – सदाशिव परिसर, पुरी (उडीसा)
2. प्रशान्तराघवम् – गङ्गानाथ झा परिसर, प्रयाग, उत्तरप्रदेश
3. कुन्दमाला – जयपुर परिसर, जयुपर, राजस्थान
4. प्रसन्नराघवम् – भोपाल परिसर, मध्यप्रदेश
5. बालरामायण – रणवीर परिसर, जम्मू
6. अभिषेकनाटक – के.जे.सौमय्याविद्यापीठपरिसर, मुम्बई (महाराष्ट्र)
7. सीताराघवम् – श्रीराजीव गाँधी परिसर, शृङ्गेरी, कर्नाटक
8. प्रतिमानाटक – श्री वेदव्यास परिसर, हिमाचल प्रदेश
9. महावीरचरितम् – लखनऊ परिसर, उत्तरप्रदेश
10. आश्चर्यचूड़ामणि – गुरुवायुर परिसर, केरल

इस महोत्सव में **आश्चर्यचूड़ामणि** की प्रस्तुति विस्मयकारी रही।

दशम नाट्योत्सव

5–7 फरवरी, 2013

L.T.G. प्रेक्षागृह, नई दिल्ली

1. मुदितकुसुमचन्द्रम् – गङ्गानाथ झा परिसर, प्रयाग, उत्तरप्रदेश
2. मल्लिकामकरन्दम् – श्री सदाशिव परिसर, पुरी (उडीसा)
3. मृच्छकटिकम् (1–2 अंक) – श्रीराजीव गाँधी परिसर, शृङ्गेरी, कर्नाटक
4. मृच्छकटिकम् (3–5 अंक) – गुरुवायुर परिसर, केरल
5. मृच्छकटिकम् (6–7 अंक) – श्री वेदव्यास परिसर, हिमाचल प्रदेश
6. मृच्छकटिकम् (8 अंक) – श्री रणवीर परिसर, जम्मू
7. मृच्छकटिकम् (9,10 अंक) – लखनऊ परिसर, उत्तरप्रदेश
8. मालतीमाधवम् – जयपुर परिसर, जयुपर, राजस्थान
9. कौमुदीमित्रानन्दप्रकरणम् – के.जे.सौमय्याविद्यापीठपरिसर, मुम्बई (महाराष्ट्र)
10. प्रबुद्धरौहिणेयम् – भोपाल परिसर, मध्यप्रदेश

एकादश नाट्योत्सव

1–3 फरवरी, 2014

हिन्दू महाविद्यालय, प्रेक्षागृह, नई दिल्ली

1. प्रमद्वरा – गङ्गानाथ झा परिसर, प्रयाग, उत्तरप्रदेश
2. चन्द्रकला – श्री सदाशिव परिसर, पुरी (उडीसा)
3. वृषभानुजा – भोपाल परिसर, मध्यप्रदेश
4. मृगांकलेखा – के.जे.सौमय्याविद्यापीठपरिसर, मुम्बई (महाराष्ट्र)
5. मणिमंजरी – श्री रणवीर परिसर, जम्मू
6. विद्योत्तमा – श्री वेदव्यास परिसर, हिमाचल प्रदेश
7. अनारकली – एकलव्य परिसर, अगरतला, त्रिपुरा
8. कर्पूरमंजरी – श्रीराजीव गाँधी परिसर, शृङ्गेरी, कर्नाटक
9. प्रियदर्शिका – लखनऊ परिसर, उत्तरप्रदेश
10. रत्नावली – जयपुर परिसर, जयुपर, राजस्थान
11. शृंगारमंजरी – गुरुवायुर परिसर, केरल

इस महोत्सव का विशेष आकर्षण नाटिकाओं की सुन्दर प्रस्तुति रही। विद्योत्तमा (पद्मश्री प्रोफे. अभिराज राजेन्द्र मिश्र द्वारा विरचित) अनारकली तथा श्रृंगारमंजरी की प्रस्तुति विद्यार्थियों ने अत्यन्त लगन एवं परिश्रम से की।

द्वादश नाट्योत्सव

4–6 फरवरी, 2015

शंकर लाल कन्सर्ट, प्रेक्षागृह, नई दिल्ली

1. मुद्राराक्षस (1–3 अंक) – गङ्गानाथ झा परिसर, प्रयाग, उत्तरप्रदेश
2. मुद्राराक्षस (4–7 अंक) – गुरुवायुर परिसर, केरल

3. बालभारतम् – श्रीराजीव गाँधी परिसर, शृङ्गेरी, कर्नाटक
4. मालतीमाधवम् (1–3 अंक) – लखनऊ परिसर, उत्तरप्रदेश
5. मालतीमाधवम् (4–7 अंक) – भोपाल परिसर, मध्यप्रदेश
6. मालतीमाधवम् (8–10 अंक) – के.जे.सौमय्याविद्यापीठपरिसर,मुम्बई (महाराष्ट्र)
7. बालभारतम् (1–3 अंक) – श्री वेदव्यास परिसर, हिमाचल प्रदेश
8. बालभारतम् (4–7 अंक) – श्री रणवीर परिसर, जम्मू
9. बालभारतम् (8–10 अंक) – जयपुर परिसर, जयुपर, राजस्थान
10. महावीरचरितम् (1–4 अंक) – श्री सदाशिव परिसर, पुरी (उडीसा)
11. महावीरचरितम् (5–7) – एकलव्य परिसर, अगरतला, त्रिपुरा

त्रयोदश नाट्य महोत्सव

24–26 फरवरी, 2016

डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन्, प्रेक्षागृह, नई दिल्ली

1. लटकमेलकम् – श्री रणवीर परिसर, जम्मू
2. वंचकपंचकम् – एकलव्य परिसर, अगरतला, त्रिपुरा
3. कुहनाभैक्षवम् – श्री वेदव्यास परिसर, हिमाचल प्रदेश
4. मृदंगदासप्रहसनम् – श्री गङ्गानाथ झा परिसर, प्रयाग, उत्तरप्रदेश
5. स्नुषाविजयम् – लखनऊ परिसर, उत्तरप्रदेश
6. हास्यार्णवप्रहसनम् – श्री सदाशिव परिसर, पुरी (उडीसा)
7. पलाण्डुमण्डनम् – जयपुर परिसर, जयुपर, राजस्थान
8. मत्तविलास – गुरुवायुर परिसर, केरल
9. विवाहविडम्बनम् – के.जे.सौमय्याविद्यापीठपरिसर, मुम्बई (महाराष्ट्र)
10. हास्यचूड़ामणि – भोपाल परिसर, मध्यप्रदेश
11. भगवदज्जुकीयम् – श्रीराजीव गाँधी परिसर, शृङ्गेरी, कर्नाटक

इस नाट्य महोत्सव में **प्रकरणों** का मंचन अत्यन्त खूबसूरती के साथ किया गया।

चतुर्दश नाट्य महोत्सव

27 फरवरी से 1 मार्च, 2017

डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन्, प्रेक्षागृह, नई दिल्ली

1. छत्रपतिसाम्राज्यम् (1–5 अंक)– श्री वेदव्यास परिसर, हिमाचल प्रदेश
2. छत्रपतिसाम्राज्यम् (6–10 अंक)– श्री रणवीर परिसर, जम्मू
3. पण्डितराजीयम् – श्रीराजीव गाँधी परिसर, शृङ्गेरी, कर्नाटक
4. अंगुष्ठदानम् – एकलव्य परिसर, अगरतला, त्रिपुरा
5. लीलाभोजराजम् – श्री गङ्गानाथ झा परिसर, प्रयाग, उत्तरप्रदेश
6. दाम्पत्यकलहम् – श्री रघुनाथ कीर्ति परिसर, देवप्रयाग, उत्तराखण्ड

7. रक्षाबन्धनम् – श्री सदाशिव परिसर, पुरी (उडीसा)
8. मदनमोहनमालवीयकीर्तिमंजरीनाटकम् –लखनऊ परिसर, उत्तरप्रदेश
9. संयोगितास्वयंवरम् – गुरुवायुर परिसर, केरल
10. प्रतापविजयम् – जयपुर परिसर, जयुपर, राजस्थान
11. स्नेहसौवीरम् – के.जे.सौमय्याविद्यापीठपरिसर मुम्बई (महाराष्ट्र)
12. तण्डुलप्रस्थीयम् – भोपाल परिसर, मध्यप्रदेश

पंचदश नाट्य महोत्सव

21–24 नवम्बर, 2017

डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन्, प्रेक्षागृह, नई दिल्ली

1. विख्यातविजयम् – लखनऊ परिसर, उत्तरप्रदेश
2. विवेकानन्दविजयम् – के.जे.सौमय्याविद्यापीठपरिसर, मुम्बई (महाराष्ट्र)
3. सीताराघवम् – गुरुवायुर परिसर, केरल
4. चैतन्यचन्द्रोदयम् – श्री रणवीर परिसर, जम्मू
5. लक्ष्मीमानवेदम् – श्री रघुनाथ कीर्ति परिसर, देवप्रयाग, उत्तराखण्ड
6. बाणहरणम् – श्री सदाशिव परिसर, पुरी (उडीसा)
7. सुभद्राधनंजयम् – श्रीराजीव गाँधी परिसर, शृङ्गेरी, कर्नाटक
8. राघवाभ्युदयम् – एकलव्य परिसर, अगरतला, त्रिपुरा
9. किरातार्जुनीयव्यायोग – जयपुर परिसर, जयुपर, राजस्थान
10. प्रेमपीयूषम् – भोपाल परिसर, भोपाल, मध्यप्रदेश

इसके अतिरिक्त **संस्कृतसप्ताहमहोत्सव–2021** के अन्तर्गत विभिन्न परिसरों द्वारा अधोलिखित नाटकों का प्रदर्शन किया गया।

सुभद्राधनजंयम्, किरातार्जुनीयव्यायोग, नागानन्द, शिखाबन्धनम्, शान्तामंगलम्, तण्डुलप्रस्थीयम् इत्यादि।

इस प्रकार केन्द्रीय संस्कृत विश्वविद्यालय, नई दिल्ली, संस्कृत नाटकों के प्रयोगानुशीलन के लिए सदैव तत्पर रहा है।

इसके अलावा **संस्कृत रंग**, वीणापाणि समिति द्वारा संस्थापित **श्रीनाट्यम्** एवं अनेक युवा रंगकर्मी इस दिशा में अच्छा कार्य कर रहे हैं। जिनमें **मनोज मिश्र** ने मृच्छकटिकम्, विद्योत्तमा, स्नेहसौवीरम्, षोडश संस्कार, मालतीमाधवम्, नारदमोहनीयम्, नागमण्डलम्, मृदंगलेखा, कर्णभारम् तथा विश्व सारथी, भारत इत्यादि का निर्देशन किया है। नामचीन रंगकर्मियों के साथ कार्य करने वाले मनोज मिश्र अनेक संस्कृत नाटकों में अभिनय–कौशल से सबको लुभा चुके हैं।

वीणापाणि संस्कृत समिति, भोपाल द्वारा संस्थापित **श्री–नाट्यम्** के द्वारा भी अनेक संस्कृत नाटकों का मंचन हो चुका है। **प्रो. धर्मेन्द्र सिंहदेव** के नेतृत्व में इन नाटकों का प्रदर्शन हो चुका है। जिनमें बुद्धचरितम् तथा सोलह–संस्कार आदि मुख्य हैं।

इस प्रकार संस्कृत रंगमंच निरन्तर विकास क्रम को प्राप्त करता हुआ संस्कृत नाटकों के मंचन के लिए कृतसंकल्पित है।

बोध प्रश्न/अभ्यास प्रश्न

1. कालिदास संस्कृत अकादमी स्थित है –

   (क) जयपुर (ख) रोहतक (ग) रामटेक (घ) उज्जैन

2. रवीन्द्र रंगमंच स्थित है –

   (क) काशी (ख) लखनऊ (ग) जयपुर (घ) शिमला

3. दमन–मंजरी नाटक के रचयिता हैं –

   (क) भवभूति (ख) राधावल्लभ त्रिपाठी (ग) रमाकान्त पाण्डेय (घ) मोहन कवि

4. मिलान करें –

क.	सोपानम्	–	1. मध्यप्रदेश
ख.	सागर विश्वविद्यालय	–	2. दीपक–भारद्वाज
ग.	युव–तरंग	–	3. भोपाल
घ.	वीणापाणि	–	4. कवलम नारायण पणिक्कर

5. रिक्त स्थानों की पूर्ति करें –

   1) ज्ञानप्रवाह नामक संस्था .... स्थित है।

   2) अखिल भारतीय कालिदास समारोह .... में होता है।

   3) कौमुदी महोत्सव का आयोजन .... करता है।

   4) पलाण्डुमण्डनम् एक .... है।

अभ्यास–प्रश्न

1. केन्द्रीय संस्कृत विश्वविद्यालय, नई दिल्ली द्वारा प्रदर्शित संस्कृत नाटकों के विषय में विस्तार से वर्णन करें।
2. आधुनिक युग में संस्कृत रंगमंच इस विषय पर निबन्ध लिखें।

15.3 सारांश

इस इकाई में आपने आधुनिक युग में संस्कृत रंगमंच के विषय में विस्तार से अध्ययन किया। इसके अन्तर्गत संस्कृत रंगमंच के विविध पक्षों को दृष्टिगत रखते हुए **तार्लेकर** के अविस्मरणीय योगदान को कथमपि भुलाया नहीं जा सकता। प्रायोगिक पक्ष को मजबूत बनाते हुए अभिनय कौशल, संगीत–विधान एवं मंच सज्जा को लेकर इन्होंने संस्कृत रंगमंच को ऊँचाईयाँ प्रदान की। सत्रहवीं शताब्दी से प्रारम्भ होने वाले इस रंगमंच पर अनेक प्रयोग किये गए जिनमें कलकत्ता की **विद्यातोषिणी** नामक संस्था, संगीत नाटक अकादमी, नई दिल्ली में आयोजित विचार गोष्ठी तथा कालिदास संस्कृत अकादमी, उज्जैन का भरपूर सहयोग प्राप्त हुआ। कुडियाट्टम शैली में संस्कृत नाटकों का मंचन इस दिशा में नये युग का सूत्रपात हुआ। कवलम नारायण पणिक्कर तथा कमलेशदत्त त्रिपाठी ने कालिदास के संस्कृत नाटकों का मंचन किया। रतन थियेम जैसे नामचीन रंगकर्मियों ने संस्कृत रंगमंच को विश्वस्तरीय बनाने के लिए कमर तोड़ मेहनत की। मणिपुरी शैली में **कर्णभार** का प्रदर्शन तो अमिट छाप छोड़ गया। इस प्रकार आपने संस्कृत रंगमंच के इतिहास के विषय में विस्तार से जाना।

तदनु वाराणसी, राजस्थान, उज्जयिनी तथा दक्षिण के प्रदेशों के संस्कृत रंगमंच के विषय में आपने जाना। इसके अन्तर्गत वाराणसी में प्रदर्शित होने वाले **सौभद्रहरण** नामक नाटक जो भारतेन्दु नाटक मण्डली ने प्रदर्शित किया था, उसके विषय में पढ़ा। जयपुर के संस्कृत रंगमंच के अन्तर्गत वहाँ के राजा–महाराजाओं द्वारा स्थापित **रामप्रकाश–टाकीज** एवं राजमहलों में स्थापित नाट्यशालाओं पर मंचित होने वाले नाटकों के विषय में आपने अध्ययन किया।

इस प्रसंग में केरल के रंगमंच का संस्कृत रंगमंच को योगदान भुलाया नहीं जा सकता। कथकली एवं कुडियाट्टम शैली से सम्पृक्त होकर संस्कृत नाटकों का आकर्षक प्रस्तुतीकरण विशेष रूप से श्लाघनीय है। भारत के विभिन्न राज्यों में संस्कृत रंगमंच के लिए कार्य कर रही समर्पित संस्थाओं के विषय में भी आने गम्भीरतापूर्वक एवं विस्तार से अध्ययन किया। इसके अन्तर्गत **सोपानम्,** केरल, ज्ञानप्रवाह, वाराणसी, युव–तरंग संस्कृत नाट्य–दल, जयपुर, श्रीनाट्यम्, भोपाल तथा कालिदास संस्कृत अकादमी, उज्जैन का मुख्य योगदान रहा है।

इस सन्दर्भ में केन्द्रीय संस्कृत विश्वविद्यालय, नई दिल्ली के विभिन्न परिसरों द्वारा प्रदर्शित संस्कृत नाटकों का मंचन भी संस्कृत रंगमंच का प्रमुख हिस्सा है। अब तक 160 से अधिक नाटकों का मंचन करने वाली यह संस्था न केवल भारत में अपितु सम्पूर्ण विश्व में इसके लिए विख्यात है। कमल वशिष्ठ, सोनल मानसिंह, हबीब तनवीर, अनिल मारवाड़ी, मनोज मिश्रा, राधावल्लभ त्रिपाठी, कमलेश दत्त त्रिपाठी, के.एस. राजेन्द्रन, नवदीप कौर, पणिक्कर, शान्ता गांगुली तथा राजेन्द्र अवस्थी जैसे महनीय रंगकर्मियों ने संस्कृत रंगमंच को वैश्विक धरातल पर लाने के लिए अथक प्रयास किया। इस प्रकार इस इकाई में आपने संस्कृत रंगमंच के विविध पक्षों को समेकित रूप में जाना एवं समझा।

15.4 शब्दावली

1. त्रिपुरदाह – एक प्रकार का भाण ।
2. विद्योत्तमा – पद्मश्री प्रो. अभिराज राजेन्द्र मिश्र द्वारा विरचित एक नाटिका
3. नवमांश – कालिदास संस्कृत अकादमी, उज्जैन के मुख्य भवन का नाम।
4. बाणभट्ट समारोह – रेवा (मध्यप्रदेश) में वार्षिक आयोजन।
5. प्रो. वेम्पटि कुटुम्ब शास्त्री – राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान के पूर्व निदेशक
6. नाट्यशास्त्र अनुसन्धान केन्द्र – भोपाल में स्थित।
7. चम्पकराम – प्रसिद्ध संस्कृत प्रकरण।
8. वोलोस थियेटर समूह – ग्रीक का प्रसिद्ध नाट्य रंगमंच।

15.5 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. जयपुर की संस्कृत साहित्य को देन – डॉ. प्रभाकर शास्त्री, शरण बुक डिपो, रामगंज चौपड़, जयपुर।
2. प्रतिस्पन्द – प्रो. रमाकान्त पाण्डेय, राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान, नई दिल्ली।
3. भारतीय तथा पाश्चात्त्य रंगमंच, सीताराम चतुर्वेदी, हिन्दी समिति, लखनऊ, 1964

4. रंगमंच – कला और दृष्टि, डॉ. गोविन्द पाठक, तक्षशिला प्रकाशन, नई दिल्ली।
5. भारतीय रंगमंच का विवेचनात्मक इतिहास, डॉ. अज्ञात, पुस्तक संस्थान, कानपुर।
6. नाट्यम् (पत्रिका) – नाट्य परिषद्, सागर विश्वविद्यालय, सागर, मध्यप्रदेश।

15.6 बोध/अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न

1. क) जयपुर
2. ग) जयपुर
3. घ) मोहन कवि
4. क–4, ख–1, ग–2, घ–3
5. (i) वाराणसी (ii) उज्जैन (iii) केन्द्रीय संस्कृत विश्वविद्यालय, नई दिल्ली (iv) प्रकरण।

ignou THE PEOPLE'S UNIVERSITY

इकाई 16 संस्कृत रंग के प्रसिद्ध निर्देशक

इकाई की रूपरेखा

16.0 उद्देश्य

16.1 प्रस्तावना

16.2 संस्कृत रंग के प्रसिद्ध निर्देशक

16.2.1 कवालम नारायण पणिक्कर

16.2.2 कमलेशदत्त त्रिपाठी

16.2.3 राधावल्लभ त्रिपाठी

16.2.4 भारतरत्न भार्गव

16.3 सारांश

16.4 शब्दावली

16.5 कुछ उपयोगी पुस्तकें

16.6 बोध/अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

16.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप :

- संस्कृत रंग के प्रसिद्ध निर्देशकों के कृतित्व एवं व्यक्तित्व के विषय में जान सकेंगे।
- कवालम नारायण पणिक्कर के योगदान को ज्ञात कर सकेंगे।
- संस्कृत रंग में कमलेशदत्त त्रिपाठी द्वारा किये गये प्रयोगों के विषय में अध्ययन कर सकेंगे।
- राधावल्लभ त्रिपाठी के योगदान के बारे में परिचित हो सकेंगे।
- भारत रत्न भार्गव के द्वारा किये गए रंगमंचीय प्रयोगों के बारें में पढ़ सकेंगे।

16.1 प्रस्तावना

इससे पूर्व आपने आधुनिक युग में संस्कृत रंगमंच के अन्तर्गत भारत के प्रमुख नगरों में स्थापित संस्कृत की नाट्यधर्मी प्रवृत्ति एवं संस्कृत रंगमंच के विषय में अध्ययन किया। वाराणसी, उज्जैन, जयपुर, सागर तथा दक्षिण के प्रदेशों में अभिव्याप्त संस्कृत रंगमंच के क्रियाकलापों के साथ–साथ उनके द्वारा प्रदर्शित किये जाने वाले संस्कृत नाटकों के विषय में आपने गम्भीर अध्ययन किया। सागर विश्वविद्यालय, सागर, केन्द्रीय संस्कृत विश्वविद्यालय, नई दिल्ली, सोपानम्–केरल, ज्ञानप्रवाह–वाराणसी, कालिदास संस्कृत अकादमी उज्जैन तथा युवतरंग–जयपुर (राजस्थान) के अनतिरसाधारण योगदान के विषय में आपने अध्ययन किया।

प्रस्तुत इकाई में आप संस्कृत रंग के प्रसिद्ध निर्देशकों के विषय में विस्तृत अध्ययन कर सकेंगे जिनमें कवालम नारायण पणिक्कर, राधावल्लभ त्रिपाठी, कमलेश दत्त

त्रिपाठी तथा भारत रत्न भार्गव आदि प्रमुख है। उपर्युक्त नाट्यनिर्देशकों के संस्कृत नाटकों के प्रति असीम श्रद्धा एवं अप्रतिम विश्वास के बारे में भी आप जान सकेंगे।

16.2 संस्कृत रंग के प्रसिद्ध निर्देशक

संस्कृत रंगमंच को दुनिया के बीच खड़ेंक रने का सम्पूर्ण श्रेय संस्कृत के निर्देशकों को जाता है। इनके अप्रतिम योगदान को कथमपि विस्मृत नहीं किया जा सकता। आचार्य भरत के नाट्यशास्त्र के अनुकूल रंगमण्डप अथवा रंगमंच को दृष्टिगत करते हुए इन निर्देशकों ने अद्भुत कार्य किया है। संस्कृत नाटकों का वैश्विक धरातल पर प्रसार, संस्कृत नाटकों में स्थापित जीवन–मूल्य, संस्कृत नाटकों में स्थापित लोकसमस्या तथा संस्कृत नाटकों में स्थापित नाट्य–तत्त्व को जनता के सामने नूतनावतार में लाना वास्तव में चुनौती भरा कार्य है। इस कार्य में हमारे निर्देशक सफल हुए हैं, यह कहते हुए हमें कोई हिचकिचाहट नहीं है। इनमें बेताब, हबीब तनवीर, कवालम नारायण पणिक्कर, कमलेशदत्त त्रिपाठी, रेवाप्रसाद द्विवेदी, प्रेमलता शर्मा, कृष्णकान्त शर्मा, राधावल्लभ त्रिपाठी, रतन थियेन, हरिराम आचार्य, अनिल मारवाड़ी, सिंहदेव धर्मेन्द्र, सुज्ञान कुमार माहान्ति, रमाकान्त पाण्डेय, मनोज मिश्र, दीपक भारद्वाज, कमल वशिष्ठ तथा वी.राघवन् प्रमुख हैं। सूर्यमोहन कुलश्रेष्ठ, रूपा गांगुली तथा गोवर्धन पांचाल कुछ ऐसे नाम हैं जिनके बिना संस्कृत रंगमंच की कल्पना नहीं की जा सकती।

16.2.1 कवालम नारायण पणिक्कर

कवालम नारायण पणिक्कर ऐसा नाम है जो उच्चारण में तो रमणीय है ही, कार्य में भी अनिन्द्य सुन्दर है। मानव को महामानव बनाने के लिए एक ही रसायन है और वह है उसका कार्य। पणिक्कर को भी महामानव बनाने के लिए कार्य ने जो भूमिका का निवर्हण किया है वह वस्तुतः अनतिरसाधारण है।

पणिक्कर का जन्म केरल के कवालम नामक ग्राम में हुआ था। घर में इनका नाम **चालायिल** था। इनके मामा सरदार कवालम माधव पणिक्कर तथा चाचा डॉ. के. अय्यप्पा पणिक्कर, एक मलयालम कवि थे। अर्थशास्त्र में अपनी पढ़ाई समाप्त कर इन्होंने कानून से स्नातक की परीक्षा पास की। अधिवक्ता के रूप में अपने जीवन का प्रारम्भ इन्होंने 1955 में किया तथा 6 वर्षों तक इस रूप में कार्य किया। परन्तु कला एवं साहित्य में अधिक रुचि होने के कारण इन्होंने यह कार्य छोड़ दिया। 1961 में केरल संगीत नाटक अकादमी, त्रिचुर का सचिव नियुक्त किया गया। केरलीय लोक संगीत तथा शास्त्रीय संगीत में इन्होंने अत्यन्त दक्षता प्राप्त की थी। 1974 में पणिक्कर त्रिचुर से तिरुवन्नन्तपुरम् आ गए। इस समय जी. अरविन्दन ने इनके **अवनवन कदम्ब** नामक नाटक को फिल्माया। संगीत नाटक अकादमी, नई दिल्ली के उपाध्यक्ष के रूप में इनको सर्वदा याद किया जायेगा। 1983 में संगीत नाटक अकादमी अवार्ड से इनको नवाजा गया तथा 2002 में संगीत नाटक अकादमी, फैलोशिप से इनको पुरस्कृत किया गया तथा 2007 में पद्मभूषण से अलंकृत किया गया। केरल राज्य का फिल्म अवार्ड से भी इनको सम्मानित किया गया। मध्यप्रदेश शासन ने कालिदास सम्मान से इनको पुरस्कृत किया गया।

26 मलयालम नाटक तथा अनेक संस्कृत नाटक तथा संस्कृत से मलयालम में अनूदित नाटकों का निर्देशन करने का श्रेय पणिक्कर को जाता है। 1981 तथा 1996 में विक्रमोर्वशीयम्, 1982 में अभिज्ञान–शाकुन्तलम्, 1979 में मध्यमव्यायोग, 1984 तथा 2001 में कर्णभार, 1988 में ऊरुभंग, 1996 में स्वप्नवासवदत्तम् तथा दूतवाक्यम् का

इन्होंने सफलतापूर्वक निर्देशन किया। **तिरूवनन्तपुरम्** में स्थित **सोपानम्** रंगमण्डली के संस्थापक निर्देशक आप रहे।

पणिक्कर की सबसे बड़ी विशेषता यह रही कि उन्होंने केरल की पारम्परिक नाट्य और नृत्य पद्धतियों से एक ऐसी मानक रंग–पद्धति विकसित की, जो एक तरफ संस्कृत की गौरवशाली परम्परा का निर्वाह सिद्ध हुई तो दूसरी तरफ उसका सृजनात्मक विकास। कुडियाट्टम जैसी शास्त्रीय नाट्यविधा से प्रेरित होकर श्री पणिक्कर ने कथकलि, मोहिनी अट्टम तथा सोपानम् संगीत जैसे कलारूपों से अपनी रंगदृष्टि को विकसित किया। सांकेतिक मुद्राओं का सफल प्रयोग, आहार्य की सूझबूझ तथा संस्कृत संवादों का सम्यक् उच्चारण पणिक्कर के द्वारा निर्देशित संस्कृत नाटकों की विशेषताएँ रही हैं।

भास महोत्सव में **कर्णभार** तथा **कालिदास अकादमी, उज्जैन** में **ऊरुभंग** का प्रदर्शन इस मायने में खास रहा कि इन दोनों का शास्त्रीय विधि से मंचन किया गया एवं वाचिक अभिनय पर खासा जोर रहा। कथकली के प्रयोग–वैशिष्ट्य के माध्यम से नाटक के नायकों को प्रशिक्षित करना तथा नाटक के साथ नायक का तादात्म्य सम्बन्ध स्थापित करना, इन दो महत्वपूर्ण तत्वों को पणिक्कर ने विकसित किया। इस प्रकार कवालम नारायण पणिक्कर ने संस्कृत रंगमंच को जनप्रिय एवं रोचक बनाकर भारतीय रंगमंच के इतिहास में बहुमूल्य योगदान दिया है।

16.2.2 प्रोफेसर कमलेशदत्त त्रिपाठी

संस्कृत रंगमंच में कलमेशदत्त त्रिपाठी एक जाना पहचाना नाम है। संस्कृत नाट्य की प्रयोगधर्मिता पर आपके कार्य से इस रंगमंच को भलीभाँति पुष्टता प्राप्त हुई है। विभिन्न नाट्यशास्त्रीय व्याख्यानों, शोध–आलेखों एवं नवीन प्रकाशनों के कारण नाट्य–समुदाय में आपका विशेष नाम है। त्रिपाठी ने काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी के कला संकाय में धर्म एवं दर्शन विभाग में सन् 1970 से 1981 तक अध्यापन किया। इन्होंने 1977 में धर्म विभाग को संस्कृत विद्या धर्मविज्ञान संकाय में धर्म एवं आगम विभाग में विस्तारित कराया और उसके प्रथम रीडर एवं विभागाध्यक्ष नियुक्त हुए। 1987 में इन्हें प्रोफेसर पद पर नियुक्त किया गया। 1981 में आप कालिदास संस्कृत अकादमी, उज्जैन के निदेशक के रूप में प्रतिष्ठित हुए। राष्ट्रीय एवं अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर इस अकादमी को स्थापित करने का सम्पूर्ण श्रेय प्रो. त्रिपाठी को ही है। इस दौरान कालिदास संस्कृत अकादमी विभिन्न प्रकार के साहित्यिक एवं सर्जनात्मक क्रियाकलापों के लिए प्रमुख केन्द्र बनी, जिसमें कालिदास को केन्द्र में रखकर समस्त भारतीय चिन्तन, साहित्य एवं कला का अध्ययन एवं शोध आरम्भ हुआ। संस्कृत नाटकों के निर्देशक के रूप में आपने न केवल आधुनिक नाट्यकर्मियों, प्राचीन कलाकारों तथा अध्येताओं को एक साथ जोड़ने का प्रयास किया ताकि संस्कृत के विद्वानों एवं आधुनिक नाट्यकारों के बीच सार्थक बातचीत हो सके। 2007 में भारत के महामहिम राष्ट्रपति द्वारा आपको ''सर्टिफिकेट ऑफ मेरिट'' पुरस्कार से नवाजा गया। इसके बाद 2007 में ही इन्दिरा गाँधी राष्ट्रिय कला केन्द्र, नई दिल्ली ने वाराणसी शाखा के परामर्शदाता के रूप में आपको मनोनीत किया गया, जहाँ वे 2016 तक भारतीय कला एवं सौन्दर्यशास्त्र पर विभिन्न गतिविधियों को संचालित करते रहे। यहाँ रहते हुए नाट्यशास्त्र की नेपाली वाचना के प्रधान सम्पादक के रूप में कार्य किया और उसके तीन भागों का प्रकाशन किया। दिसम्बर, 2016 में आपको काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी में स्थापित ''भारत अध्ययन केन्द्र'' में शताब्दी पीठ आचार्य के

पद पर आमन्त्रित किया गया, जहाँ वे मार्गदर्शक आचार्य के रूप में कार्यरत हैं। अभी वर्तमान में प्रो. त्रिपाठी अन्तरराष्ट्रिय हिन्दी विश्वविद्यालय, वर्धा (महाराष्ट्र) के कुलाधिपति भी हैं। 1996 से विदेशी विश्वविद्यालयों में अभ्यागत आचार्य (Visiting Professor) के रूप में आपका कार्यकाल अविस्मरणीय है।

संस्कृत रंगमंच के लिए आप निरन्तर सक्रिय रहे। अनेक संस्कृत नाटकों का मंचन आपके द्वारा सम्पन्न किया गया है। पाश्चात्य रंगमंच के विविध तथ्यों एवं तत्त्वों का संस्कृत रंगमंच में अभिनव प्रयोग की कला में आपको महारत हासिल है। कालिदास संस्कृत अकादमी, उज्जैन में इन प्रयोगों के प्रायोगिक पक्ष को बखूबी देखा जा सकता है। हिन्दी एवं उर्दू के प्रसिद्ध नाट्यनिर्देशकों के साथ मिलकर आपने संस्कृत रंगमंच के नूतन प्रतिमान स्थापित किये। कालिदास के तीन नाटक तथा भास के सम्पूर्ण नाटकों का मंचन इस दिशा में सार्थक एवं सफल प्रयास है।

मध्यमव्यायोग, दूतघटोत्कच तथ अभिज्ञान–शाकुन्तल जैसे महनीय नाटकों में अभिनय करने के कारण प्रो. त्रिपाठी विश्रुत एवं प्रथित रहे। संवाद–अदायगी, अभिनय कौशल तथा नाट्यतत्त्वानुकरण इनमें भरपूर रूप से विद्यमान रहा। छात्र–जीवन से ही संस्कृत नाटकों के प्रति अभिरुचि ने कालान्तर में एक विशाल स्वरूप ले लिया आधुनिक संस्कृत नाटकों का रंगमंच पर प्रयोग, अन्य भाषाओं के नाटकों का संस्कृत नाटकों पर प्रभाव तथा नाट्यशास्त्रीय सिद्धान्तों का पूर्ण पालन इनकी विशेषताएँ रही। नाट्यप्रशिक्षण कार्यशालाओं तथा व्याख्यानों में कलाकारों के साथ आपका सहकर (Tuning) देखते ही बनता था। **बालरामायण** तथा **रत्नावली नाटिका** के सफल प्रयोग इस दिशा में महत्वपूर्ण पड़ाव रहे। नाट्यशास्त्रीय ग्रन्थों एवं लेखों के माध्यम से आपके अविस्मरणीय योगदान को कथमपि भूलाया नहीं जा सकता। Natyasastra in the modern world नामक पुस्तक में प्रकाशित Bharata's Natyasastra and Traditional Indian Theatre – The issue of the identity of Indian Theatre and the impact of Natyasastric tradition the contemporary theatre यह लेख विद्वानों के आकर्षण का केन्द्र रहा। प्रो. त्रिपाठी ने संस्कृत रंगमंच को वैश्विक रंगमंच पर पहुँचाने के लिए अथक प्रयास एवं परिश्रम किया, जिसके फलस्वरूप आज संस्कृत रंगमंच न केवल भारत में प्रत्युत विदेशों में भी खूब फल–फूल रहा है। नाट्यशास्त्रीय रंगमंच की अवधारणा के परिप्रेक्ष्य में किये गए नूतन प्रयोगों के साये में पलता हुआ भारतीय रंगमंच इसी का जीता–जागता उदाहरण है। लोक रंगमंचीय शैली, लोक–भाषाओं में समाहित नाट्य तत्त्व एवं भारतीय रंगमंच की गहरी समझ प्रो. त्रिपाठी को भीड़ से अलग करती है। नई दिल्ली में आयोजित पन्द्रहवें विश्व संस्कृत सम्मेलन में संस्कृत रंगमंच के विषय–समूह को स्थापित करना भी प्रो. त्रिपाठी का ही भगीरथ कार्य रहा है।

वस्तुतः संस्कृत रंगमंच प्रो. त्रिपाठी के इस अप्रतिम योगदान को कभी विस्मरण नहीं कर सकता। आपके कार्यों के बिना संस्कृत रंगमंच की कल्पना करना कोरी कल्पना ही होगी, यह निर्विवाद सत्य है।

16.2.3 प्रोफेसर राधावल्लभ त्रिपाठी

संस्कृतरचनाधर्मिता के मानदण्ड, प्रखर समीक्षक, उत्तम नाटककार तथा सरस कवि के रूप में प्रसिद्ध राधावल्लभ त्रिपाठी का जन्म 15 फरवरी, 1949 को मध्यप्रदेश के राजगढ़ जिले के नृसिंहगढ़ गाँव में पं.गोकुलप्रसाद त्रिपाठी के पुत्र के रूप में हुआ। सागर विश्वविद्यालय से संस्कृत विषय में स्नातकोत्तर उपाधि प्राप्त करने के बाद

उदयपुर स्थित मोहनलाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय से संस्कृत विभाग में प्रवक्ता के रूप में दिनांक 18 अगस्त 1971 को आपने अध्यापक जीवन प्रारम्भ किया। इसके कुछ समय बाद ही 3 जनवरी 1973 को आप सागर विश्वविद्यालय में व्याख्याता के रूप में आ गए। 1973 से 1978 तक कार्य करने के बाद 01 जनवरी, 1979 को इसी विभाग में प्रवाचक पद पर नियुक्त हुए। इनके द्वारा की गई सारस्वती–सपर्या के कारण ही सागर विश्वविद्यालय का संस्कृत विभाग अध्यापन एवं अनुसन्धान के क्षेत्र में प्रसिद्ध हो गया। इसके फलस्वरूप ही विश्वविद्यालय अनुदान आयोग ने इस विभाग को साहित्यशास्त्र एवं नाट्यशास्त्र को विशेष अध्ययन के रूप में चुना। इसके बाद आप 14 अगस्त 2008 से 2013 तक राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान (वर्तमान में केन्द्रीय संस्कृत विश्वविद्यालय) के कुलपति रहे। कुलपति के रूप में कार्य करते हुए विश्वविद्यालय के इतिहास में अभिनव प्रकल्पों की शुरुआत करने का श्रेय आपको ही है।, जिनमें विश्व संस्कृत सम्मेलन, अखिल भारतीय नाट्य महोत्सव, युवमहोत्सव तथा मुक्त स्वाध्याय पीठ की संकल्पना शामिल है। विदेशों में भी प्रो. त्रिपाठी ने अपने ज्ञान का परचम लहराया है। हुम्बोल्त्स विश्वविद्यालय बर्लिन, लाइडन। हालैंड, वियाना, सिल्पाकोर्न विश्वविद्यालय इत्यादि में आपने अध्यापन एवं अनुसन्धान के क्षेत्र में महनीय कार्य किया है। जर्मन, फ्रेंच तथा अंग्रेजी भाषाओं में अत्यन्त निपुण प्रो. त्रिपाठी नाट्यशास्त्र के लब्धप्रतिष्ठित विद्वान् हैं। शास्त्रीय संगीत एवं अनेक वाद्ययन्त्रों में अतिशय प्रीति भी आपके कलापक्ष का उत्कट उदाहरण है।

नाटककार प्रो. त्रिपाठी आधुनिकतावाद के प्रबल पक्षधर हैं। प्राच्य एवं पाश्चात्य साहित्य के गहन अध्ययन से आपका अनुभवलोक अतिविस्तृत एवं वैविध्यपूर्ण बन गया है। मानवीय संवेदनाओं को अपने रचना–संसार में मुख्य बनाकर प्रस्तुत करना आपकी निजी विशेषता है। आपके द्वारा विविध विषयों पर लेखन कार्य किया गया है जो न केवल भारत में बल्कि सम्पूर्ण संसार में प्रसिद्ध है। इनकी कुछ रचनाएँ इस प्रकार हैं–

1. नाट्यशास्त्र के बीज शब्द, भाग –1, 1986, संस्कृत परिषद्, सागर।
2. अप्राप्य नाट्यशास्त्रीय ग्रन्थ – 1987, संस्कृत परिषद्, सागर।
3. महाकवि भवभूति और उनका नाट्यलोक, 1986, संस्कृत परिषद्, सागर।
4. कालिदास परिशीलन, 1987, संस्कृत परिषद्, सागर।
5. नाट्यशास्त्रसन्दर्भसूची, 1987, संस्कृत परिषद्, सागर।
6. कालिदास की समीक्षा परम्परा, 1987, संस्कृत परिषद्, सागर।
7. भारतीय नाट्य स्वरूप और परम्परा, 1987, संस्कृत परिषद्, सागर।
8. नाट्यशास्त्र के बीज शब्द भाग–2, 1995, संस्कृत परिषद्, सागर।
9. नाट्यशास्त्र और विश्व रंगमंच, 1989, संस्कृत परिषद्, सागर।
10. सूत्रधारवृत्त सहलेखन, 1989, संस्कृत परिषद्, सागर।
11. संस्कृत रूपकों में प्रहसन, 1989, अक्षयवट प्रकाशन, इलाहाबाद।
12. दूसरी परम्परा के नाटककार भवभूति, 1995, साम्य पुस्तिका–11, प्रगतिशील लेखकसंघ, अम्बिकापुर।
13. नाट्यशास्त्र विश्वकोश (चार खण्ड,1999), प्रतिभा प्रकाशन, दिल्ली।
14. Lecturer on Natyasastra, 1981, Poona University, Poona

15. A New Bibliography of Sanskrit Drama (Ed.1998), Pratibha Publication.
16. मध्यप्रदेश का रंगमंच, जनसम्पर्क निदेशालय, भोपाल, 2005
17. प्रेमपीयूषम् (नाटक), 1970, संस्कृत परिषद्, सागर।
18. नाट्यमण्डपम्, 1980, सागर।
19. भारतीय रंगसमुन्मेष, 1981, सागर।
20. प्रेक्षणसप्तकम्, एकांकी संग्रह, प्रतिभा प्रकाशन, दिल्ली।
21. तण्डुलप्रस्थीयम् नाटक, 1999, प्रतिभा प्रकाशन दिल्ली।
22. विक्रमचरितम् (नाटक), 2000, प्रतिभा प्रकाशन, दिल्ली।
23. सुशीला (2002), प्रेक्षणकम्, संस्कृत परिषद्, सागर।
24. अभिज्ञानशाकुन्तल, 1986ए कालिदास प्रकाशन, उज्जैन।
25. कुन्दमाला, 1982, संस्कृत परिषद्, सागर।
26. प्रबुद्धरौहिणेय, 1983, दिङ्नाग, संस्कृत परिषद्, सागर।
27. संक्षिप्तनाट्यशास्त्रम् 1988, अक्षयवट प्रकाशन, इलाहाबाद।
28. वेणीसंहार–2000, सागर।
29. स्वप्नवासवदत्तम् – 2000, मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल।
30. रघुवंशम्, 2000, मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल।
31. उत्तररामचरितम्–2003, रामकृष्ण मिशन, विदिशा।
32. दमयन्ती (नाटक हिन्दी में) 1991, नाट्यपरिषद्, सागर।
33. भुवनदीप (1992), नाटपरिषद्, सागर।
34. नाट्यशास्त्रविश्वकोश।

उपर्युक्त सभी ग्रन्थ नाट्यशास्त्र एवं रंगमंच से सम्बन्धित हैं। इनके अतिरिक्त प्रो. त्रिपाठी की और भी भूयसी रचनाएँ हैं।

नाटककार एवं अभिनेता के रूप में प्रो. त्रिपाठी अत्यन्त प्रसिद्ध रहे हैं। अध्ययन के दौरान अनेक संस्कृत नाटकों में आपने अभिनय किया है, जिनमें अभिज्ञानशाकुन्तल, वेणीसंहार तथा मत्तविलास प्रहसन आदि है। सागर विश्वविद्यालय, सागर, मध्यप्रदेश के संस्कृत विभाग में नाट्य परिषद् की संस्थापना, राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान, नई दिल्ली के कुलपति रहते हुए अखिल भारतीय नाट्य महोत्सव का समायोजन तथा नाट्य प्रशिक्षण कार्यशाला तथा राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान के भोपाल परिसर में नाट्य केन्द्र की स्थापना आपके द्वारा किए गये महत्वपूर्ण कार्य हैं। नाट्य परिषद्, सागर विश्वविद्यालय, सागर में अनेक संस्कृत नाटकों का मंचन आपके नेतृत्व में हुआ जिनमें कालिदास, भास, भवभूति तथा विशाखदत्त आदि के नाटकों के साथ–साथ आधुनिक संस्कृत नाटक भी शामिल है। संस्कृत नाटकों का लोक रंगमंच के आलोक में प्रस्तुतीकरण भी आपकी विशिष्ट देन रही है।

संस्कृत नाट्य के लिए युवाओं को नाट्यशास्त्र का प्रशिक्षण प्रदान कर उत्तम अभिनेता के रूप में उनको तैयार करना आपका प्रमुख लक्ष्य रहा है। प्रो. त्रिपाठी ने अध्ययन काल में भी संस्कृत नाटकों को अभिनीत किया तथा उनमें उत्तम अभिनय दिखाया।

विदेशों के विश्वविद्यालयों में नाट्यशास्त्र के वैशिष्ट्य के विषय में प्रदान किये गये व्याख्यान तो भारतीय रंगमंच को जानने के लिए पर्याप्त सामग्री प्रस्तुत करते हैं। नाट्यशास्त्र का गहरा ज्ञान आपके निर्देशकत्व में भी अत्यन्त सहायक रहा है। राजस्थान संस्कृत अकादमी, जयपुर तथा भाण्डारकर ओरियन्टल रिसर्च इन्स्ट्यीट्युट, पुणे में आपके नाट्यशास्त्रीय व्याख्यानों का संग्रह तैयार किया है।

इस प्रकार नाट्य–निर्देशक के रूप में प्रो. त्रिपाठी भारतीय रंगमंच का चमकता हुआ सितारा है।

16.2.4 भारत रत्न भार्गव

भारत रत्न भार्गव वस्तुतः भारतीय रंगमंच के रत्नस्वरूप हैं। पिछले छह दशकों से भार्गव सम्पूर्ण नाट्य–संसार में छाये हुए हैं। केन्द्रीय संगीत नाटक अकादमी के उपसचिव पद के जरिए इन्होंने रंगकर्म की दशा और दिशा को नए आयाम दिए हैं। अभी वर्तमान में आप जयपुर में रहकर दृष्टिबाधित लोगों को रंगकर्म का प्रशिक्षण दे रहे हैं। ''नाट्यकुलम्'' की स्थापना आपके सपनों का संसार रहा है।

राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर में हिन्दी के प्रोफेसर रहते हुए रंगकर्म के प्रति समर्पित रहे प्रो. भार्गव दृष्टिबाधित बच्चों को रंगकर्म का प्रशिक्षण दे रहे हैं। Royal Academy of Dramtic Arts (London) से प्रशिक्षित प्रो. भार्गव संस्कृत रंगमंच के प्रति भी सक्रिय रहे हैं। 1938 में जन्में प्रो. भार्गव ने संस्कृत नाटकों का हिन्दी और राजस्थानी में अनुवाद कर दर्शकों के समक्ष प्रस्तुत किया। ''रंग हबीब'' इनकी लोकप्रिय कृति है।

इस प्रकार भारत रत्न भार्गव संस्कृत रंगमंच के पुरोधा के रूप में सदैव स्मृति पटल पर अंकित रहेंगे।

बोध प्रश्न / अभ्यास प्रश्न

1. **सोपानम्** नामक नाट्य संस्था के निदेशक हैं –

   (क) भारत रत्न भार्गव (ख) प्रो. रमाकान्त पाण्डेय

   (ग) कवालम नारायण पणिक्कर (घ) प्रो. राधावल्लभ त्रिपाठी

2. नाट्यशास्त्र विश्वकोश के रचयिता है –

   (क) प्रो. राधावल्लभ त्रिपाठी (ख) कमलेश दत्त त्रिपाठी

   (ग) हबीब तनवीर (घ) कमल वाशिष्ठ

3. दृष्टिबाधित बच्चों को रंगकर्म का प्रशिक्षण प्रदान करने वाले नाट्यकर्मी हैं –

   (क) मनोज वाजपेयी (ख) सर्वेश व्यास

   (ग) बलदेवानन्द सागर (घ) भारत रत्न भार्गव

4. राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान, नई दिल्ली में प्रतिवर्ष आयोजित होने वाला नाट्य महोत्सव है –

   (क) कौमुदी महोत्सव (ख) रंग महोत्सव

   (ग) खेल महोत्सव (घ) विद्वन्महोत्सव

अभ्यास–प्रश्न

1. संस्कृत रंगमंच में राधावल्लभ त्रिपाठी के योगदान को उल्लेखित करें।
2. कमलेश दत्त त्रिपाठी रंगकर्म के उत्तम सर्जक है, इस कथन की पुष्टि करें।

16.3 सारांश

इस इकाई में आपने संस्कृत रंग के प्रसिद्ध निर्देशकों के विषय में अध्ययन किया। इसके अन्तर्गत कवालम नारायण पणिक्कर, कमलेश दत्त त्रिपाठी, राधावल्लभ त्रिपाठी तथा भारतरत्न भार्गव के अविस्मरणीय योगदान के विषय में विस्तृत रूप से अध्ययन किया।

वस्तुतः कवालम नारायण पणिक्कर ने कुडियाट्टम शैली को आधार बनाकर संस्कृत रंगमंच को पुष्ट किया एवं इसमें अभिनव प्रयोगों के वातायनों को खोला। **सोपानम्** नामक रंग संस्था को स्थापित कर संस्कृत रंगमंच की वैश्विकता एवं वैज्ञानिकता को समृद्ध किया। भारतनाट्यम् जैसे प्रसिद्ध नृत्य को आधार बनाकर रंगमंच के इतिहास में अपना नाम दर्ज करवाया। उसी सन्दर्भ में आपने कमलेश दत्त त्रिपाठी के योगदान को भी विस्तृत रूप से समझा। इन्होंने लोकरंगमंच को आधार बनाकर संस्कृत नाट्य परम्परा को पुष्पित एवं पल्लवित किया। कालिदास संस्कृत अकादमी, उज्जैन के निदेशक के रूप में संस्कृत नाटकों का विश्व की अनेक भाषाओं में प्रस्तुतीकरण इनकी प्रमुख देन रही है। भारतीय रंगमंच में अभिनव प्रयोगों की सम्भावना को भी इन्होंने खूब तराशा। इस विषय को भी आपने विस्तार से जाना।

इसके बाद आपने राधावल्लभ त्रिपाठी के संस्कृत नाट्य–इतिहास में योगदान को समझा। प्रो. त्रिपाठी ने संस्कृत रंगमंच को युवावर्ग के समक्ष अत्यधिक लोकप्रिय बनाया। नाट्य परिषद्, सागर तथा भोपाल में नाट्य अध्ययन केन्द्र की स्थापना भी इन्हीं के अविरत श्रम का प्रतिफल रहा है। इसके उपरान्त भारत रत्न भार्गव के अविस्मरणीय योगदान को भी आपने विस्तृत रूप से जाना।

16.4 शब्दावली

1. मत्तविलास – एक प्रसिद्ध प्रहसन ।
2. भास महोत्सव – प्रतिवर्ष मध्यप्रदेश में आयोजित होने वाला महोत्सव।
3. विक्रमोर्वशीय – कालिदास का प्रसिद्ध संस्कृत नाटक।
4. दूतघटोत्कच – भास का प्रसिद्ध संस्कृत नाटक।

16.5 कुछ उपयोगी पुस्तकें

राधावल्लभ त्रिपाठी

1. नाट्यशास्त्र विश्वकोश – प्रतिभा प्रकाशन, दिल्ली, 1995
2. रंगकर्म – वीरेन्द्र नारायण, आलेख प्रकाशन, दिल्ली, 1978
3. अभिनवभारती – आचार्य विश्वेश्वर, हिन्दी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, 1960
4. नाट्यम् (पत्रिका) नाट्य परिषद्, सागर विश्वविद्यालय, सागर, मध्यप्रदेश

16.6 बोध/अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न

1. (ग)
2. (क)
3. (घ)
4. (क)

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY